बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

चकमक की कहानी

रु. 2.50

अक्टूबर, 86

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका भाग 2 अंक 4 अक्टूबर, 1986

संपादक : विनोद रायना
संपादक मंडल : राजेश उत्साही; निशा व्यास
हरगोविंद राय, गोपाल राठी
कला : जया विवेक
उत्पादन/वितरण : हिमांशु बिस्वास, कमल सिंह
संपादकीय परामर्श : रेक्स

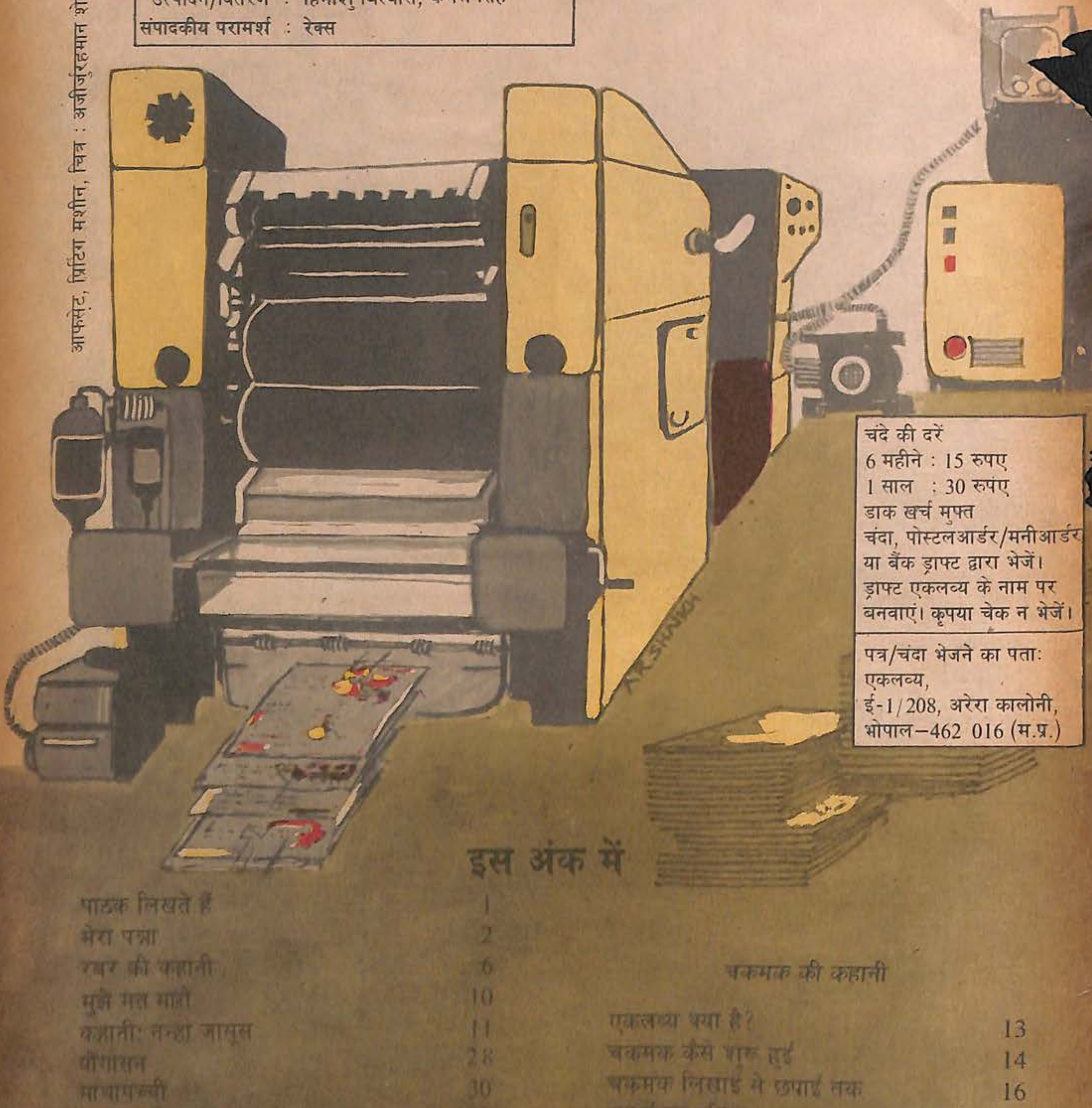

आफसेट प्रिंटिंग मशीन, चित्र : अजीजुर्रहमान शेख, देवास

चंदे की दरें
6 महीने : 15 रुपए
1 साल : 30 रुपए
डाक खर्च मुफ्त
चंदा, पोस्टलआर्डर/मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम पर बनवाएं। कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा भेजने का पता:
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कालोनी,
भोपाल–462 016 (म.प्र.)

इस अंक में

पाठक लिखते हैं	1
मेरा पन्ना	2
रबर की कहानी	6
मुर्गी मत मारो	10
कहानी: नन्हा जासूस	11
वीरासन	28
माथापच्ची	30
धान–भूसी कलर बनाओ	32
कहानी : मिट्ठी	33
खेल खेल में	37
अपनी प्रयोगशाला	38
[illegible]	40

चकमक की कहानी

एकलव्य क्या है?	13
चकमक कैसे शुरू हुई	14
चकमक लिखाई से छपाई तक	16
छपाई का इतिहास	21
लैटर प्रेस	23
आफसेट प्रेस	25
रंगीन छपाई	26
एक मजेदार खेल	27

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

डा० पी.जे. लवकरे
सलाहकार, एस.टी.पी.

तार/Telegram : SCIENCTECH
दूरभाष/Telephone : 662628 (PABX)
: 662626 (PABX)
: 662260 (PABX)
टेलेक्स/Telex : 31-66096 DST IN
: 31-61805 DST IN

भारत सरकार
विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय
विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
DEPTT. OF SCIENCE & TECHNOLOGY, NEW DELHI

पाठक लिखते हैं

सं. 3/51/86/विज्ञा.   दिनांक : 7 अगस्त 1986

प्रिय विनोद,

पिछले कुछ महीने से मैं 'चकमक' के अंक नियमित रूप से देख रहा हूं समस्त तो नहीं, हां कुछ लेख मैंने पढ़े हैं----जो कि निश्चित ही ज्ञानवर्द्धक और सुरुचिपूर्ण लगे. कहूं कि ये मात्र बच्चों के ज्ञान के लिये ही नहीं अपितु आम पाठक के भी उपयोग की एक स्तरीय पत्रिका है.

शायद जून के अंक में मैंने पढ़ा है कि 'चकमक' की एक प्रति छापने की लागत 3.10 रुपये आती है जबकि इस राशि में प्रचार-प्रसार तथा अन्य खर्चा शमिल नहीं है. इसके बावजूद आपने इसका मूल्य 2.50 रुपये रखा हुआ है. निश्चित ही यह आपके कुशल संपादन-समन्वय का द्योतक है कि इतनी सुरुचिपूर्ण पत्रिका इतने सस्ते में भारत के बच्चों तक पहुंचाते हैं. एक बात आपने और कही है--- 'विज्ञापन' के संदर्भ में. पहले आप विज्ञापन के चक्कर में फंसना नहीं चाहते थे. लेकिन मैं समझता हूं कि आज के युग में 'चकमक' तो क्या कोई भी पत्रिका विज्ञापन दिये बिना अपना संपूर्ण खर्च स्वयं वहन नहीं कर सकती. आपको विज्ञापन लेने में पहल करनी चाहिए, लेकिन विज्ञापन इस प्रकार के होने चाहियें जिसका कि बच्चों पर प्रतिकूल असर न पड़े विज्ञापन हासिल करने के पश्चात् आप 'चकमक' का मूल्य और कम करने में सफल होंगे. मेरी शुभकांमनयें आपके साथ हैं.

यह पत्र लिखने का मेरा विशेष उद्देश्य यह रहा कि मैं आपको बताना चाहता हूं कि 'चकमक' का नया अंक जब मेरे घर अथवा आफिस में आता है तो सबसे पहले मेरे साथ कार्यरत दफ्तरी श्री चेतन दास जिनकी आयु करीब 45 वर्ष है, उसको पढ़ना चाहते हैं. 'चकमक' का प्रत्येक नया अंक पढ़ने में उनकी विशेष रुचि रहती है--- उनकी इस रुचि को मैं अपने कार्यों में अति व्यस्त होते हुए भी की बार देखता हूं और मुझे इससे से काफ़ी प्रसन्नता होती है. मैंने 'चकमक' में विशेष रुचि लेने के बारे में जब श्री चेतन दास से पूछा तो उन्होंने बताया :

"सा'ब मुझे तो 'चकमक' मैगज़ीन बहुत अच्छी लगती है मैं तो इसके हर नये अंक का इंतज़ार करता रहता हूं. इस मैगज़ीन के पसंद होने का सबसे प्रमुख कारण तो यह है कि यह हिन्दी में है और इसकी भाषा इतनी सरल है कि मेरे जैसा कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी बड़ी आसानी से इसमें बतायी बातें समझ लेता है. इसमें लिखी बहुत सी बातें मेरे दैनिक जीवन में काम में आती है जैसे कि 'पानी' वाले अंक में चित्रों के माध्यम से दूषित पानी से बीमारियों का ज़िक्र किया गया है. ऐसी बातें हमें बड़ी-बड़ी मैगज़ीन में नहीं मिलती. 'चकमक' पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे मैं इसे पढ़ नहीं रहा बल्कि इससे बातचीत कर रहा हूं. जब मैं इसे अपने घर ले जाता हूं तो मेरा लड़का जिसकी उम्र 16 साल की है इसका एक-एक शब्द बड़े ध्यान से पढ़ता है उसका कहना है कि उसकी स्कूल की विज्ञान की किताबों में भी इतनी रोचक और ज्ञानवर्ध सामग्री नहीं होती जितनी की 'चकमक' के हर एक अंक में मिलती है. हमारे पड़ोसी की एक लड़की भी इसे मांग कर पढ़ने को ले जाती है--- उसकी एक शिकायत है कि यह पत्रिका दिल्ली में बुक-स्टालों पर क्यों नहीं मिलती ? न ही उनके स्कूल में आती है. क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि यह पत्रिका सब स्कूलों में पढ़ने को मिले ? सा'ब 'पानी' और 'टानिक' वाले अंक मुझे बहुत काम का लगे मैंने वो अंक संभाल कर रख लिये हैं. मुझे विश्वास है कि 'चकमक' हर महीने पढ़ने को मिलता रहेगा.

तो विनोद, चेतन दास के विचार पढ़ने से आपको पता लग गया होगा कि हमारे विभाग का दफ्तरी भी आपकी पत्रिका पढ़ने में कितनी रुचि लेता है.... चेतन दास... मात्र दफ्तरी नहीं है--- वह एक प्रतिनिधि है--- आम पाठक और सामान्य नागरिकों का.

मैं समझता हूं आपको ऐसे सहृदय पाठक की प्रतिक्रिया 'चकमक' के सभी पाठकों तक पहुंचानी चाहिये.

शुभकांमनाओं सहित.

आपका,
प्रभाकर लवकरे
(पी० जे० लवकरे)

(डा. पी.जे. लवकरे, सलाहकार, भारत शासन व प्रधानमंत्री की विज्ञान सलाहकार समिति के सचिव, का संपादक चकमक के नाम लिखा गया पत्र)।

ईमानदार गरीब बालक

एक गरीब लड़का था। घर में उसकी मां और छोटी बहिन थी। बहिन बीमार थी। उसकी दवा कराने के लिए वह अपने चाचा को कहने जा रहा था। रास्ते में उसे 120 रुपए, पड़े मिले। लड़का बड़ा ईमानदार था। उसने अपने मन में निश्चय किया कि पता लगाकर यह चीज जिसकी है उसी को दे दूंगा। उसनें घर आकर सब हाल मां से कहा कि तू कोई उपाय बता जिससे मैं उसे खोज पाऊं। लड़के की मां भी बड़ी ईमानदार थी। वह पुत्र की बात सुनकर प्रसन्न हुई, और बोली ''बेटा तेरी नीयत सदा अच्छी रहे। अखबार में खबर देने से मालिक आकर ले जाएगा।

लड़का अखबार वाले के पास गया। उसकी नेक नियत देखकर उसने यह खबर छाप दी। खबर पढ़कर पाकेट का मालिक आया और इतनी गरीबी में ऐसी ईमानदारी देखकर चकित हो गया। लड़के की सत्यता देखकर वे रुपए उसकी बहन की दवा के लिए दे दिए।

कु. कुसुम यादव
आठवीं, रसौटा (पामगढ़)

दीवाली आई

दीवालों पर हुई पुताई,
वर्षा की हो गई विदाई।
चमकीला सा ओढ़ दुपट्टा,
थिरक-थिरक इतराई।
देखो दीवाली है आई,
देखो दीवाली है आई।

बच्चे नाचें उमंगें भर के,
मांग रहे बंदूक पटाखे।
है कितनी खुशियां लाई,
देखो दीवाली है आई।
देखो दीवाली है आई,
देखो दीवाली है आई।

लाई रोशनी बिन सूरज के,
आई है कैसी सजधज के।
किस्म-किस्म की बनी मिठाई,
देखो दीवाली है आई।
देखो दीवाली है आई,
देखो दीवाली है आई।

मन के दीप जलाओ लोगो,
छुआछूत मिटाओ लोगो।
बांटो खूब मिठाई,
चाहे कितनी हो मंहगाई।
देखो दीवाली है आई,
देखो दीवाली है आई।

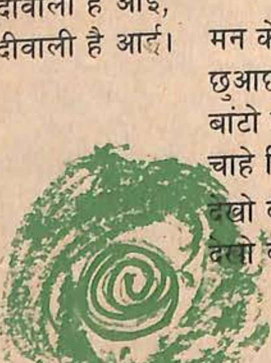

अरुणा त्रिपाठी
आठवीं, दतिया

 चित्र : चारु अग्रवाल, भोपाल

राजा कार्बन

कार्बन कहे मैं राजा दशरथ,
कार्बनिक रसायन मेरा देश।
चार हाइड्रोजन मेरे बेटे,
मिलकर बनते मेथेन गैस।
हैलोजन की क्लोरीन बेटी,
चली मिलने को मेथेन से।
सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में,
संयोग हुआ शीघ्रता से।
संयोग क्रिया से क्रमशः बना,
मोनो डाई, ट्राई क्लोरो मेथेन।
एच.सी.एल. निकल-निकल कर,
अंत बना ट्रेटा क्लोरो मेथेन।
चार हाइड्रोजन त्यागकर मेथेन,
कार्बन ट्रेटा क्लोराइड बनाया है।
फिर भी कार्बनिक रसायन में,
राजा कार्बन का राज्य छाया है।

सुनीता राय
दसवीं, भरींडांड (बिलासपुर)

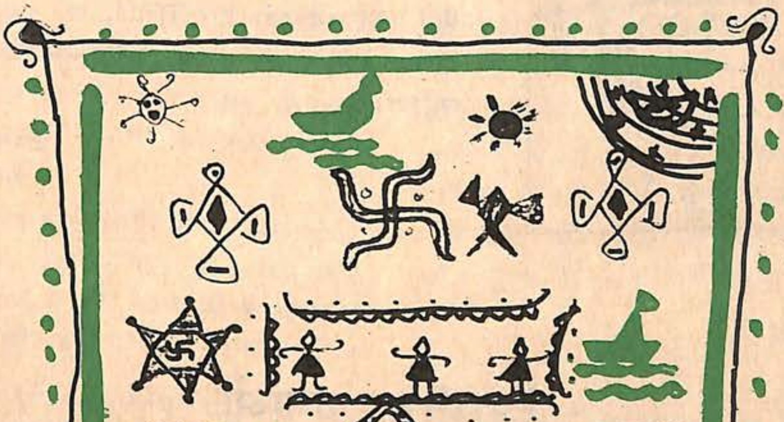

चित्र : चारु अग्रवाल, भोपाल

पाकेटमार

एक व्यापारी एक बार किसी शहर में अपने एक मित्र से मिलने पहुंचा। अपना सामान वगैरह एक होटल में रखकर मित्र के घर आया। काफी देर तक गपशप करता रहा। अंधेरा छा गया। रात में रास्ता ढूंढना कठिन लग रहा था। बगल की गली के नुक्कड़ पर वह थोड़ा सुस्ताने लगा।

इतने में एक आदमी उसके पास से 'क्षमा करना' कहता हुआ तेजी से गुजरा। इस बीच व्यापारी ने सोचा, 'क्या वक्त हो रहा होगा?' जैकट के जेब से घड़ी टटोलने लगा पर घड़ी गायब और पॉकेट खाली।

व्यापारी ने लपककर उस आदमी की कॉलर थाम ली। गुस्से से चीखा, "सीधे से घड़ी वापस कर दे, वरना...।"

वह आदमी भय से हक्का-बक्का हो गया और घड़ी जेब से निकालकर व्यापारी को थमाते हुए मायूस सा दफा हो गया।

होटल पहुंचकर जब व्यापारी ने कमरे की बत्ती जलाई तो लो, उसे अपनी घड़ी बिस्तर पर पड़ी मिली। उस व्यापारी ने अफसोस के कारण अपना सिर थाम लिया। रात भर सोचता रहा, "ओ हो, मैंने ख्वाम ख्वाह उसे परेशान किया। शरीफ आदमी को पाकेटमार समझ बैठा, जबकि मैंने स्वयं उसकी पाकेटमारी की। असली पाकेटमार वह नहीं, मैं हूं।

दीपक नाइक
उदयनगर, देवास

नकलची तोता

एक जंगल में एक तोता रहता था। वह बहुत ही घमंडी और नकलची था। अपनी सुंदर आवाज का बहुत ही घमंड करता था। एक दिन एक शिकारी जंगल में एक पक्षी का पीछा कर उसे दौड़ाता चला जा रहा था। वह पक्षी टें...टें ... की आवाज करते हुए बेतहाशा उड़ा जा रहा था। तभी नकलची तोता उसका उपहास करने के इरादे से टें .... टें ... की आवाज दुहराने लगा। उस पक्षी ने अपनी जान बचाने का सुंदर समय जानकर अपनी दिशा तुरंत बदल दी। शिकारी ने भ्रमित होकर तोते को वही पक्षी समझकर मार डाला।

मानव को किसी भी व्यक्ति का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए।

ज्ञानेन्द्र सिंह बघेल
सरगा, सरगुजा

बैरोमीटर बनाओ

आवश्यक सामग्री : कार्क या रबर के ढक्कन वाली एक बोतल, कांच की पतली नली (लंबाई लगभग 12 सेंटीमीटर), दफ्ती का टुकड़ा, स्केच पेन।

बनाने की विधि : कार्क या रबर के ढक्कन वाली बोतल में लगभग 5 सेंटीमीटर ऊंचाई तक पानी भरो। उसमें लाल स्याही की कुछ बूंदें डालो ताकि पानी रंगीन हो जाए। अब ढक्कन के बीचों बीच छेद करके उसमें नली को इतना घुसा दो ताकि वह बोतल की पेंदी को लगभग छूने लगे।

दफ्ती की लगभग 12 सेंटीमीटर लंबी पट्टी काटकर उसको 20 बराबर भागों में बांटते हुए स्केच पेन से निशान लगाओ। ऊपर से नीचे की ओर अंक भी लिख दो। इस तरह यह स्केल बन जाएगा। इसे नली के पीछे की ओर टेप या गोंद से चिपका दो। यह स्केल वायु के दबाव को नापने के लिए है।

नली को ध्यान से देखो। इसके अंदर पानी की सतह उतनी ही है जितनी बाहर बोतल में भरे पानी की। अब नली के बाहरी सिरे पर मुंह लगाकर फूंक मारो। देखा, नली में पानी की सतह कुछ ऊपर चढ़ गई। इसी तरह फूंक मारकर इस सतह को स्केल के मध्य तक ले आओ। पर यह तभी संभव होगा, जब ढक्कन और नली वायुरुद्ध होंगे। तुम्हारा बैरोमीटर तैयार है।

वायु का दबाव यदि बढ़ता है, तो नली में पानी की सतह नीचे उतरेगी, और वायु का दबाव यदि घटेगा तो पानी की सतह ऊपर उठेगी।

वायुमंडल का दबाव बढ़ने का मतलब है-मौसम शुष्क रहेगा। वायुमंडल का दबाव घटने का मतलब है-तूफान आंधी की पूरी संभावना होगी। तुम धीरे-धीरे अपने अनुभव से ही सही भविष्यवाणी करना अपने-आप सीख जाओगे।

इस बैरोमीटर को रखने की जगह वह है जहां सर्दी, गरमी का सीधा असर न होता हो, अर्थात् घर का कोई सुरक्षित कोना।

मुकुल विनायक सप्रे
कक्षा ग्यारहवीं, लश्कर ग्वालियर

हमारा कुत्ता

बात लगभग 3-4 साल पुरानी है। जब हमारे चाचा जी और हम बालागंज में रहते थे। तब हमारे चाचा जी ने गांव रैसलपुर से एक कुत्ता लाए। हमने उसका नाम मोती रखा था। तो अब सुनिए उस मोती की कहानी। मोती को लाए लगभग एक साल हुआ होगा तभी उसकी पूंछ पर एक ऐसा रोग लगा कि धीरे-धीरे उसकी पूंछ सड़ने लगी। निराश होकर चाचा जी ने उसे सदर बाजार होशंगाबाद में छोड़ दिया। अब मोती बिल्कुल लावारिस था। फिर भी बेचारे ने होटलों का जूठा-मीठा खाकर अपना गुजारा किया। इसी तरह गुजारा करते-करते मोती को बहुत दिन बीते। तब तक हम भी मोती को लगभग भूल चुके थे। और हमारा भी सदर बाजार में नया मकान बन गया था। हम सब अब नए मकान में रहने लगे थे।

एक दिन वही उपेक्षित मोती हमारे घर के सामने की गली से गुजर रहा था। अचानक चाचा जी की नजर उस पर पड़ी। मोती के गले में वही चाचा जी के हाथ का डाला हुआ पट्टा था, और वही गेरुआ रंग। भला चाचा जी उसे क्यों न पहचानते। उन्होंने उसे मोती कहकर पुकारा और वह दुम हिलाता खुशी से दौड़ा आया। उसकी पूंछ ठीक हो चुकी थी और शरीर कुछ दुबला हो चला था। हमने तुरंत उसे भरपेट रोटी खिलाई घर भर का प्यार-दुलार पाकर मोती अपनी पुरानी यादें महसूस कर रहा था। अब मोती फिर से हमारे घर का सदस्य बन चुका था।

दो साल बीत गए। मोती अब हमारे घर की चौकसी पर था। अचानक एक दिन रात में पड़ौस के घर में चोर घुसे और मोती को भनक पड़ गई। मोती ने भौंक-भौंक कर रात के सन्नाटे को तोड़ दिया। खतरे की आशंका का संकेत पाकर हमारे पड़ौसी ने घर के आस-पास ताक-झांक की। मुहल्ले के बाकी लोग भी मोती के भौंकने से जाग चुके थे। चोर निकलकर भाग ही रहा था कि पकड़ा गया। और इस तरह मोती ने उस रात हमारे पड़ौसी को खतरे की घड़ी से उबारा।

विजेंद्र सिंह राजपूत, नवमीं
होशंगाबाद

व्यंग्य चित्र : सुदेश, मुकेश स्वर्णकार बालौदा, बिलासपुर

बूझो तो जानें?

समझना बहुत मुश्किल है
समझ का फेर होता है
वह कौन सी चिड़िया है
जिसके सर पर पैर होता है?

दो पहलवान रोज लड़े
आपस में कई बार अड़े
कोई न हारे, कोई न जीते
चतुर हो वह कदम बढ़ावे।

चार आड़े, चार खड़े
आठों के पांव में आटी
मेरी पहेली बूझो
फिर खाओ प्यारे टॉफी।

शैलेष कुमार मोदी, आठवीं
बालगढ़, देवास

रबर की कहानी

कोलंबस द्वारा इंडीज की दूसरी यात्रा के पूर्व पुरानी दुनिया में रबड़ अज्ञात था। पश्चिमी इंडीज के हेटी द्वीप में उसके कुछ साथियों ने देखा कि वहां के निवासी एक पेड़ की गोंद से बनी गेंदों से एक खेल खेलते हैं। तब गेंदे कैस्टाइल से बनती थीं। पर ये गेंदे कैस्टाइल की गेंदों से बड़ी थीं,फिर भी वे उनसे हल्की थीं और अधिक ऊंचाई तक उछलती थीं।

गोंद एक गाढ़े दूधिया द्रव से प्राप्त किया जाता था जिसे बाद में लैटेक्स कहा गया। यह द्रव एक प्रकार के पेड़ों से एकत्र किया जाता था जो द्वीप की आर्द्र और गरम जलवायु में उगते थे। वहां के निवासी लैटेक्स का उपयोग अपनी आदिम शल्य क्रिया, औषधि, जादू और भूतलीला में भी करते थे। गोंद यूरोप भेजा गया परंतु अठारहवीं शताब्दी के अंत तक भी उसका कोई व्यापारिक महत्व नहीं था। इसके कुछ उपयोगों में एक उपयोग का जिक्र जोसफ प्रिस्टले ने किया। उसने लिखा कि 'यह पदार्थ सीसे की काली पेंसिल के निशानों को कागज से मिटाने में बहुत ही सक्षम है। इसके लगभग एक इंच भुजा वाले घन की कीमत तीन शिलिंग है परंतु वह कई साल तक चलता है।' निशान मिटाने वाले इस गुण के कारण कालांतर में इसे इंडीज वाला रबर (मिटाने वाला) या इंडिया रबर कहा गया।

1823 में चार्ल्स मैकिन्टाश को, जो स्काटलैंड का एक रसायन उत्पादक था, रंजक द्रव्यों के उत्पादन के लिए बहुत अधिक अमोनिया की आवश्यकता पड़ी। उसने गैस के कारखाने से मालूम किया कि वह अमोनिया कैसे खरीदे। उन दिनों जब कोयले का भंजक आसवन होता था तब गैस और कोक के अलावा तीन पदार्थ और प्राप्त होते थे- जल में अमोनिया का घोल, टार और कोयले का तेल,जो जल और टार की सतह पर तैरता था।

ग्लासगो के गैस कारखाने के मैनेजर ने इस शर्त पर मैकिन्टाश को अमोनिया देने का वायदा किया कि वे टार और कोयले का तेल भी लें। ये दोनों पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न होते थे और एक तरह से बेकार थे। केवल थोड़े-से टार का उपयोग डाकयार्डों में लकड़ी के ऊपर होता था। इनसे छुटकारा पाने के लिए गैस उत्पादक को इन्हें गाड़ी से कई मील दूर देहात में भेजना पड़ता था और वहां बेकार पड़ी जमीन पर इन्हें फेंकना पड़ता था। मैकिन्टाश को अमोनिया की बहुत आवश्यकता थी। अतः उसने उपयोगी अमोनिया के साथ लगभग बेकार टार और बिल्कुल बेकार कोयले के तेल को खरीदना स्वीकार कर लिया।

इससे कुछ वर्ष पहले रसायनज्ञ लैटेक्स के साथ प्रयोग करके यह मालूम कर चुके थे कि वह कुछ द्रवों में घुलता है। मैकिन्टाश कोयले के तेल को बेकार नहीं जाने देना चाहता था अतः उसने प्रयोग द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया कि इसमें लैटेक्स घुलता है कि नहीं। उसने पाया कि वह उसमें घुलता है और जब घोल को एक खुली प्याली में छोड़ दिया जाता है तब द्रव वाष्प बनकर उड़ जाता है और प्याली के भीतरी पृष्ठ पर रबर की एक पतली तह जम जाती है। मैकिन्टाश को मालूम था कि रबर की चद्दर में से होकर पानी नहीं गुजरता है। अतः उसने रबर के इस गुण से लाभ उठाने का निश्चय किया।

उसने एक कपड़े के एक पृष्ठ पर, कोयले के तेल में रबर के पतले घोल को लगाया। उसने कपड़े को थोड़ी देर

हवा में रहने दिया। उससे कोयले का तेल वाष्प बनकर उड़ गया और कपड़े के पृष्ठ पर रबर की एक पतली तह जम गई। इस तरह उसने कपड़े को ऐसा बना दिया कि उसमें से पानी न जा सके।

इस प्रयोग के बाद अन्य प्रयोग हुए और शीघ्र ही मैकिन्टाश बहुत अधिक मात्रा में वाटरप्रूफ कपड़ा बनाने लगा। वह कपड़े के दो टुकड़े लेता था और प्रत्येक के एक पृष्ठ पर घोल लगाता था। जब वाष्पन के कारण अधिकांश तेल उड़ जाता था तब घोल चिपकने वाला हो जाता था। दोनों कपड़ों के चिपकने वाले पृष्ठों को मिलाकर उन्हें दबाया जाता था। जब तेल वाष्प बनकर उड़ जाता था तब कपड़े के दोनों टुकड़े चिपके रह जाते थे और उनके बीच में रबर होता था। इस तरह से आरंभिक 'मैकिन्टाश' कपड़े तैयार होने लगे।

ये आरंभिक मैकिन्टाश कपड़े निश्चय ही वाटरप्रूफ थे। परंतु गरमी की ऋतु में बीच वाली रबर की परत मुलायम और चिपचिपी हो जाती थी और बाहर निकल आती थी और जाड़े में कपड़ा इतना कड़ा हो जाता था कि कोट को खूंटी पर टांगने की जरूरत नहीं होती थी। वह फर्श पर सीधे खड़ा रहता था। चिपचिपाहट को दूर करने के लिए हेवर्ड नामक एक अंग्रेज ने रबर की तह पर गंधक का चूर्ण रखा। उसने पहले गंधक को तारपीन में घोला और घोल को रबर की तह पर फैलाया। जब तारपीन वाष्प बनकर उड़ गया तब रबर पर गंधक की एक तह जम गई।

1838 में चार्ल्स गुडईयर नामक एक अमरीकी ने उसी मिश्रण के साथ प्रयोग किए। एक कहानी के अनुसार उसने रबर और तारपीन में घुली हुई गंधक को मिलाया और मिश्रण को एक कड़ाही में रखा। वह अपने एक मित्र से बड़े जोर से बहस कर रहा था। अपने तर्क को जोरदार बनाने के लिए उसने अपने हाथ को घुमाया। संयोगवश रबर और गंधक का मिश्रण कड़ाही से उछलकर गरम भट्टी के ऊपर जा पड़ा। परंतु रबर मुलायम और चिपचिपा नहीं हुआ और अंत में पिघला नहीं जैसा कि साधारण रबर को होना चाहिए था। इसके बजाए वह क्रमशः झुलस गया।

गुडईयर को बहुत आश्चर्य हुआ, परंतु इस घटना में उसे उस समय बहुत दिलचस्पी नहीं हुई। कुछ समय बाद उसे यह बात सूझी कि यदि ठीक मौके पर झुलसने की क्रिया रोकी जा सके तो रबर का चिपकने वाला प्राकृतिक गुण दूर किया जा सकता है। उसने बहुत से प्रयोग किए और अंत में वह ऐसा रबर बनाने में सफल हुआ जो गरम करने पर न पिघलता था और न चिपचिपा होता था और न ठंडा होने पर कड़ा होता था।

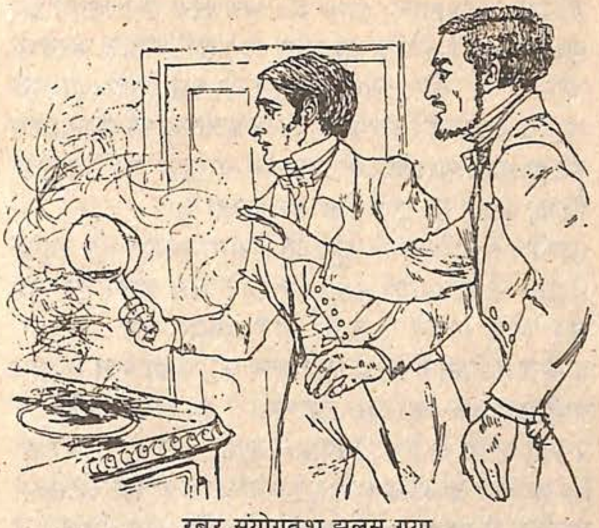

रबर संयोगवश झुलस गया

इसके बजाए उसका लचीलापन कायम रहता था। इस प्रकार से तैयार किया हुआ रबर 'वल्कनायित' रबर कहा जाने लगा।

बहुत साल बाद इस घटना पर टिप्पणी करते हुए गुडईयर ने लिखाः

इस उद्देश्य (वल्कनायित रबर बनाना) को पूरा करने का प्रयत्न वह बहुत सालों से कर रहा था और इस तथ्य से संबंधित किसी बात के बारे में वह लापरवाही नहीं करता था। सेब के गिरने की तरह इस घटना ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया। परंतु इस संकेत को वही व्यक्ति समझ सकता था जिसका मस्तिष्क अपने अनुसंधान के लिए सहायक किसी भी घटना से निष्कर्ष निकालने के लिए पहले से तैयार हो। आविष्कारक इस बात को स्वीकार करता है कि उसकी खोजें वैज्ञानिक और रासायनिक अनुसंधान का परिणाम नहीं थीं परंतु वह यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि संयोग का परिणाम थीं। उसका दावा है कि वे खोजें गहन तर्क का परिणाम हैं।

उद्योग ने वल्कनायित रबर के बहुत से उपयोग मालूम कर लिए। फलस्वरूप जहां 1830 में ब्रिटेन में केवल 25 टन रबर मंगाया गया था वहां 1870 में बाहर से मंगाए जाने वाले रबर की मात्रा बढ़कर 8000 टन हो गई। उस समय क्यू वैज्ञानिक ब्रिटेन के सुदूर पूर्वी उपनिवेशों में रबर के वृक्षों को उगाने की संभावना के बारे में सोच रहे थे। चूंकि कच्चा रबर कुछ वृक्षों के रस या लैटेक्स से प्राप्त किया जाता था अतः वैज्ञानिकों ने पहले उन विभिन्न प्रकार के वृक्षों के बारे में जो रबर लैटेक्स देते थे और विशेषकर उन वृक्षों के बारे में जो सुदूर पूर्व के देशों में उगाये जाने पर अधिक रबर दे सकते थे, सूचना प्राप्त की। वे इस निश्चय पर पहुंचे कि इसके लिए सबसे अच्छा वृक्ष 'हेविया' है जो ब्राजील में बहुतायत पाया जाता है। वहां अमेजन महानदी और उसकी सहायक नदियों से सिंचित प्रदेश के हजारों वर्ग मील भूमि पर

हेविया के विशाल जंगल हैं। उस क्षेत्र के निवासी इन वृक्षों के तनों के निचले भाग में गहरी कटान करते थे और सबसे नीचे वाली कटान के तले मिट्टी का एक प्याला रखते थे जिसमें पेड़ से निकलने वाला दूधिया रस इकट्ठा होता था। यह लैटेक्स जब धुएंदार आग पर गरम किया जाता था तब ठोस बन जाता था।

ब्राजील से हेविया के कुछ बीज मंगाए गए और क्यू के उद्यान में बोए गए। 1873 में छोटे पौधे कलकत्ता लाए गए परंतु उनमें से बहुत थोड़े जीवित बचे।

इंडिया आफिस ने हेनरी ए. विकम को, जो ब्राजील में बहुत वर्षों तक वन-विशेषज्ञ रह चुके थे इस दिशा में फिर से प्रयत्न करने के लिए नियुक्त किया। विकम को डर था कि ब्राजील के अधिकारी इस बात का प्रयत्न करेंगे कि वे ब्राजील से बाहर बीज न ले जा सकें। अतः विकम ने बीजों को चुराकर ले जाने का निश्चय किया। बाद में उन्होंने लिखा 'मुझे इस बात का पूरा विश्वास था कि यदि अधिकारियों को मेरी यात्रा का उद्देश्य मालूम हो गया तो वे हमें गिरफ्तार कर लेंगे। मैं उन कठिनाईयों के बारे में सुन चुका था जिनका सामना क्लेमंट मार्कम को पेरू के मांटाना स्थान से सिंकोना लाने में हुई थी।'

विकम ने निश्चय किया कि वे टैपजो नदी के निकटवर्ती पठार पर उगने वाले बहुत अच्छे किस्म के हेविया वृक्षों से बीज प्राप्त करेंगे। यह नदी अमेजन की सहायक है और उससे सैंटारम नामक छोटे से स्थान पर मिलती है। अमेजन नदी इतनी चौड़ी और गहरी है कि यद्यपि सैंटारम उसके मुहाने से सैकड़ों मील दूर है फिर भी समुद्री जहाज वहां तक पहुंच सकते हैं।

विकम के सैंटारम पहुंचने के कुछ ही समय बाद 'अमेजनस' नामक यात्री-जहाज वहां आया। उस जहाज पर दो ऐसे व्यापारी थे जिनका काम था इंग्लैण्ड से लाए हुए सामान को बेचना और इससे जो धन मिले उससे स्थानीय चीजें खरीदकर इंग्लैण्ड ले जाना। लेकिन वे दोनों आदमी बेईमान थे। उन्होंने सामान बेचा परंतु जो धन मिला उसे लेकर वे चंपत हो गए। जहाज के कमांडर कैप्टन मरे ने पाया कि जहाज खाली है और इंग्लैण्ड ले जाने के लिए कोई माल नहीं है। विकम ने कैप्टन मरे की कठिनाईयों को सुना और उनसे लाभ उठाने का निश्चय किया। हेविया के बीज उस समय पके हुए थे और इकट्ठा किए जाने के लिए तैयार थे। विकम ने भारत सरकार के नाम से जहाज को भाड़े पर लिया और कैप्टन को समझाया कि लंदन में माल उतारते ही सरकार उनको भाड़ा दे देगी। कैप्टन को इस बात से राहत मिली कि उन्हें वापस ले जाने के लिए माल मिला और उन्होंने बीज ले जाना स्वीकार कर लिया।

विकम तुरंत एक छोटी-सी नाव में सवार होकर टैपजो नदी में उन घने जंगलों की ओर चल पड़ा जहां हेविया पेड़ उगते थे। वहां पहुंचकर उसने बीज इकट्ठा करने के लिए बहुत से स्थानीय आदमियों को नियुक्त किया। वे एक गांव में ठहरे जहां आदमी प्रतिदिन बीज के बड़े-बड़े गट्ठर लाने लगे। कुछ स्त्रियां केन की टोकरियां बनातीं थीं और कुछ बीजों को धूप में सुखाती थीं और तब उन्हें जंगली केलों के पत्तों के बीच टोकरियों में रखती थीं। जब काफी बीज इकट्ठा हो गया और टोकरियों में भरा जा चुका तब विकम ने उन्हें 'अमेजनस' जहाज के एक हवादार भाग में रखा। अब इंग्लैण्ड की लंबी यात्रा के लिए सब तैयारी हो चुकी थी। विकम को मालूम था कि माल से लदे हर जहाज को पैरा बंदरगाह में तब तक ठहरना पड़ता है जब तक पैरा शहर के अधिकारी उसे देश से बाहर जाने की आज्ञा न दे दें। उन्होंने सोचा कि यदि अधिकारियों को मालूम हो गया कि वे हेविया के बीज ले जा रहे हैं तो उन्हें यह आज्ञा नहीं मिलेगी। अतः उन्होंने पैरा स्थित ब्रिटिश कौंसिल को राजी किया कि वे इस काम में उनकी सहायता करें। दोनों बंदरगाह के अधिकारी के पास गए और उससे कहा कि जहाज पर बहुत ही नाजुक पौधे हैं जो ब्रिटेन की महारानी के क्यू स्थित शाही उद्यान के लिए विशेष रूप से मंगाए गए हैं। विकम ने कहा कि यह बहुत आवश्यक है कि ये पौधे

चित्र : श्याम पटेल, तीसरी, छोटी खरगोन (खरगोन)

शीघ्र इंग्लैण्ड पहुंच जाएं क्योंकि विलंब होने से पौधे मर जाएंगे। उन्होंने कहा कि चूंकि अधिकारी महोदय जानते हैं कि इस मामले में शीघ्रता की आवश्यकता है और पौधों को शाही उद्यान के लिए मंगाया गया है अतः वे आशा कर सकते हैं कि जहाज को बिना विलंब जाने की आज्ञा दे दी जाएगी।

कौंसिल ने विकम का समर्थन किया और दोनों ने अधिकारी को 'महामहिम' कहकर संबोधित किया और 'पुर्तगाली ढंग' से उसका गुणगान किया। बंदरगाह का अधिकारी आसानी से मान गया कि बिना निरीक्षण के ही जहाज को जाने दिया जाए।

विकम जल्दी से जहाज पर वापस आया और जहाज इंग्लैण्ड के लिए खुले समुद्र में चल पड़ा। तब वह बीज को डेक पर लाया और उन्हें खुली टोकरियों में जहाज के आगे पीछे और बगल में फैला दिया ताकि उन्हें हवा मिल सके और वे चूहों से बच सकें जिनकी जहाज में भरमार थी। जून 1876 में 70,000 बीज क्यू पहुंचे। उन्हें तुरंत कांचघरों में बोया गया परंतु उनमें से केवल तीन प्रतिशत बीज जमे।

उसी वर्ष अगस्त में लगभग 1900 पौधे 38 वार्डियन केसों में एक छात्र माली की देखरेख में लंका भेजे गए। अगले साल कुछ पौधे जो मजबूत हो चुके थे सिंगापुर तथा पूर्वी साम्राज्य के अन्य भागों में भेजे गए।

विकम की 'तस्करी' ने ब्रिटेन के सुदूर पूर्व उपनिवेशों को समृद्ध बना दिया क्योंकि हेविया जल्दी बढ़ने वाला पेड़ है और लगाने के पांच साल के भीतर ही वह लैटेक्स देने लगता है और यदि सावधानी के साथ उसकी देखभाल की जाए तो लगभग अगले बीस साल तक लैटेक्स देता रहता है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक सुदूर पूर्व में हेविया वृक्षों के बड़े-बड़े बाग अच्छी तरह से लग चुके थे और वे रबर के मामले में केवल ब्रिटिश साम्राज्य के देशों की ही नहीं, बल्कि सारे संसार की आवश्यकता पूरी कर रहे थे।

विकम अपने कार्य के लिए अच्छी तरह से पुरस्कृत हुए। उन्हें बीज के लिए स्वीकृत राशि मिली और रबर के बागों का उन्हें निरीक्षक नियुक्त किया गया। बहुत साल बाद 1911 में, रबर वृक्षों को उगाने से संबंधित काम के लिए उन्हें 'सर' की उपाधि मिली।

('विज्ञान की कहानियां' से साभार)

गरीबी और अमीरी

भारत में छाई गरीबी है,
जिसमें निर्धन दब जाता है।
दो-दो दिन खाने को खाना,
उसको भी ना जुड़ पाता है।

कोई मौज करे सोते-सोते,
कोई काम करे निशदिन डटकर।
सोने वाला सोता रहता,
कोई ना सो पाता है थककर।

यह नीति कैसी भारत में,
निर्धन को दबाया जाता है।
जो निर्धन का पेट काटते,
उन्हें और बढ़ाया जाता है।

निर्धन को चोर समझते हैं,
पर धनी लोग चोरी करते।
भर देते हैं जेबें सबकी,
इससे ना उन पर शक करते।

कोई काम करे निर्धन जाकर,
पैसों में कटाई करते हैं।
आधे से कम मिल पाता है,
ऐसी ये दलाली करते हैं।

ये प्रश्न जुबां पर आता है,
जिसका उत्तर दे दे कोई।
ये धनी क्यों मस्ती मौज करें,
जब मेहनत ना करते कोई।

निर्धन के बच्चे भूख से,
हा-हा, हा-हा दैया करते हैं।
पर धनी आदमी के बच्चे,
सुख से किलकारी भरते हैं।

जिनेन्द्र जैन 'पंकज'
ग्यारहवीं, काछी पिपरिया, सागर

मुझे मत मारो

मेरे प्यारे पापा-मम्मी
मुझे मत मारो,
मेरे कान और गाल
दुखने लगे हैं अब तो
पेट और पीठ भी,
क्या करुं
मैं चाहती तो हूं
स्कूल जाऊं
पढ़ूं-लिखूं
पर शिक्षक मुझे वैसा नहीं पढ़ाते
जैसा मैं चाहती हूं।

वे मुझे रोकते हैं
धूल में नहाने को
जैसे चिड़िया नहाती हैं,
वे हंसने भी नहीं देते
जी खोलकर
जैसे दुनिया के सभी
फूल हंसते हैं।

मुझे समझ नहीं आता
वे क्या पढ़ाते हैं, उसमें
न नदी होती है न पहाड़
न गीत गाते झरने।
मेरी नन्हीं-सी आंखों में
जो बसा है एक जंगल, उसमें
किसी भी पेड़ का
एक भी पत्ता छूकर नहीं देखा है
मेरे शिक्षक ने।

मेरे प्यारे मम्मी-पापा
मैं चाहती तो हूं
पढ़ूं पर
शिक्षक मुझे वैसा नहीं पढ़ाते
जैसा मैं चाहती हूं।

शुक्ला चौधरी
भरीडांड, बिलासपुर

चित्र : आशा शर्मा, भोपाल

उस शाम जब बच्चे कपिल के घर खेलने एकत्र हुए तो सभी की जुबान पर एक ही चर्चा थी। गांव में आई रामलीला मण्डली में हनुमान का चरित्र अभिनित करने वाले अवतारी बाबा। कहते हैं कि वे व्यक्ति हनुमान का अवतार हैं। क्योंकि वे सचमुच में उड़ते हैं और ग्रामीण दर्शक बड़ी श्रद्धा से रुपए पैसे और अनाज भेंट करते हैं। इसके अतिरिक्त वे घर पर हनुमान जी का स्मरण करते हैं और हनुमान जी उनकी देह में प्रवेश करते हैं तब वे बीमारों और अन्य मुरादें लेकर आए लोगों को धागा बांधते हैं। और खूब दान-दक्षिणा लेते हैं।

रहस्य के बारे में पूछा। लेकिन अनपढ़ गंगू स्वयं भी अनभिज्ञ था। लेकिन गंगू ने यह वादा किया कि दिन के किसी समय चौकीदार की नजरों से बचाकर वह उसे मंच पर पर्दे के भीतर-बाहर झांकने देगा। लेकिन स्वयं नहीं रहेगा। क्योंकि हनुमान जी से वह बहुत डरता था। स्वयं गंगू को भी मंच पर जाने में इसीलिए डर लगता था। कहीं हनुमान जी उस पर नाराज न हों।

जब कपिल ने मंच पर अकेले ही घूमकर चुपके से परदे की नकली छत को हटाकर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया! अवतारी बाबा के उड़ने का रहस्य उसकी समझ

नन्हा जासूस

भालचंद्र जोशी

चित्र : आशा शर्मा, भोपाल

कपिल यह सारी बातें ध्यान से सुनता रहा और सोचने लगा, आज जब दुनिया इक्कीसवीं सदी में जा रही है तब यह उड़ने वाला बाबा कहां से प्रकट हो गया? उसने तय किया कि वह भी आज रामलीला देखने जाएगा।

रात को वह भी रामलीला देखने पहुंचा। वह भी देखकर आश्चर्य चकित रह गया जब हनुमान बना वह व्यक्ति उड़ने लगा। उसने देखा कि मंच की छत के नीचे हल्के भूरे रंग के बादलों के टुकड़े भी उड़ रहे हैं। खैर वह तो समझ में आया कि मंच के चारों कोनों में रखे पंखों की हवा से रंगी हुई कपास उड़कर बादलों की भांति दिखाई दे रही है। लेकिन हनुमान बना यह व्यक्ति उड़ने कैसे लगा?

बहुत सोच-विचार के बाद उसे लगा कि इस रहस्य को पता करने में उसकी मदद मंच की सफाई करने वाला गंगू कर सकता है। उसने अनेक लालच देकर गंगू से इस

में आ गया। वह उस वक्त चुपके से घर आ गया। और फिर उसे एक उपाय सूझा, जिससे अवतारी बाबा की पोल खोली जा सकती है। लेकिन अब जरूरत थी एक ऐसे छोटे हथियार की जो लोहे के तार काट सके। और यह मिला उसे गांव में रम्मू लुहार के यहां।

रामलीला का आखिरी दिन आ गया। आज दिन में ही कपिल अपना काम कर चुका था। हनुमान जी के उड़ने का दृश्य तो वे लोग जरूरत न होने पर भी रोज खेलते थे। कपिल बड़ी उत्सुकता से बैठा था। और जब हनुमान जी के उड़ने का दृश्य आया तो वह सांस रोके देखने लगा। हनुमान जी कुछ देर तक उड़ते रहे और फिर धड़ाम से मंच पर आ गिरे। सारे दर्शक चौंक गए। भगदड़ मच गई। कपिल उछलकर मंच पर चढ़ गया और चिल्लाकर बोला, "कृपया कोई भी डरकर इधर-उधर भागे नहीं। मैं बताता हूं यह ढोंगी उड़ता

कैसे था?" और उसने सीढ़ी पर चढ़कर छत का परदा हटा दिया। सारे लोग आश्चर्य से देखने लगे। छत पर लोहे के एंगलों पर अनेक घिरनियां लटकी थीं। इन घिरनियों पर तार के सहारे ये हनुमान जी उड़ते थे। दरअसल,यह आदमी हनुमान जी के गहनों के नाम पर हाथों और पैरों में कड़े और कमर में करधनी पहने हुए है, इसमें बारीक लेकिन मजबूत तार बंधे हैं। जो ऊपर घिरनियों पर से होकर, उस कोने में जो एक चक्राकार पहिया लगा है, जैसे कि जलपोत में संचालन के लिए व्हील होते हैं। उस आकार में यह पहिया भी है। इसी के सहारे जब पहिया दाएं घुमाते हैं तो घिरनियां आगे घूमती हैं और तार के तनाव के कारण हनुमान आगे जाते थे। और पहिया बाएं घुमाने पर पीछे। इस तरह पूरे मंच पर उड़ने के लिए घिरनियों पर तार बदलते रहते थे। मंच पर छत का परदा और तार का रंग बिल्कुल एक है। साथ ही दूसरी दीवारों के परदे भी इसी रंग के हैं जिससे दूर बैठे दर्शकों को तार नजर नहीं आते। और हनुमान जी उड़ते नजर आते हैं। और भी भ्रमित करने के लिए रुई के बादल उड़ते रहते थे। कल मैंने मौका देखकर गहनों पर बंधे तारों को कमजोर कर दिया जो दिन के समय ऊपर खींचकर घिरनियों पर लटका देते थे। अधिक घर्षण के कारण वही तार आज टूट गए। यह दुष्ट विज्ञान के इस साधन का उपयोग जनता के मनोरंजन के लिए करता तो ठीक था लेकिन इसने भ्रांति फैलाकर लूटना चालू कर दिया।" सारी बातें सुन-समझ कर लोगों ने उस ढोंगी को पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया। और ग्रामसभा ने इस नन्हें जासूस को पुरस्कृत किया।

-सोण्डवा, झाबुआ (म.प्र.)

"प्रतियोगिता"

हमें तुम्हारी ढेर सारी रचनाएं और चित्र प्राप्त हुए हैं।
प्रतियोगिता के परिणाम की तुम्हें प्रतीक्षा होगी।
अभी रचनाओं और चित्र को परखा जा रहा है।
प्रतियोगिता के परिणाम जनवरी, 87 के अंक में प्रकाशित होंगे।
तब तक धीरज रखो

-सं.

चकमक की कहानी

तुम यह जरूर जानना चाहते होगे कि चकमक का इतिहास क्या है? वह कैसे छपती है? छापने के पहले क्या तैयारी करनी पड़ती है? संपादन, कला-सज्जा, उत्पादन और वितरण का क्या अर्थ है? अगले पृष्ठों पर यही सब बता रहे हैं। साथ ही छपाई का इतिहास, लेटर प्रेस तथा आफसेट प्रेस के बारे में भी। पर पहले जानो कि चकमक शुरू कैसे हुई? चकमक प्रकाशित करने वाली संस्था एकलव्य क्या है?

एकलव्य क्या है?

तुम जानते हो चकमक एकलव्य संस्था द्वारा प्रकाशित की जाती है।एकलव्य क्या है? यहां संक्षिप्त में हम यह बता रहे हैं।

अब से पांच साल पहले कुछ शिक्षक, वैज्ञानिक, शोधकर्ता, पत्रकार, प्रशासक और सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा उनके समर्थकों ने मिलकर एक संस्था स्थापित करने का निर्णय लिया। ये लोग देश की शिक्षा प्रणाली से असंतुष्ट थे और कई सालों से एक शैक्षिक प्रयोग से जुड़े थे। यह प्रयोग होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है । इस कार्यक्रम को होशंगाबाद जिले में स्थित 'किशोर भारती' बनखेड़ी, एवं 'मित्र मंडल केंद्र', रसूलिया संस्थाओं ने दिल्ली विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से शुरू किया था। यह कार्यक्रम होशंगाबाद जिले के 16 माध्यमिक स्कूलों में सन् 72 में शुरू किया गया था। सन् 78 से जिले की सभी माध्यमिक शालाओं में चल रहा है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत विज्ञान के परंपरागत पाठ्यक्रम के स्थान पर नया पाठ्यक्रम तथा पुस्तकें लागू की गई हैं।

सन् 82 में यह सोचा गया कि इस शैक्षिक प्रयोग को केवल होशंगाबाद जिले तक ही सीमित न रखा जाए, बल्कि अन्य जिलों में भी ले जाया जाए। साथ ही इस प्रयोग से जुड़े लोग अन्य विषयों,खासकर भाषा, गणित तथा सामाजिक अध्ययन में भी नया पाठ्यक्रम विकसित करने में रुचि रखते थे।

इन सब बातों की पृष्ठभूमि में 1982 में एक नई संस्था शैक्षिक शोध एवं नवाचार संस्थान की स्थापना की गई। इसी संस्था का नाम 'एकलव्य' है। एकलव्य की स्थापना में किशोर भारती ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मध्यप्रदेश शासन के अलावा कई प्रख्यात राष्ट्रीय संस्थाओं ने एकलव्य की मदद करने के लिए हाथ बढ़ाए। इनमें भारत शासन के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, पर्यावरण विभाग, योजना आयोग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मुख्य हैं।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की मुख्य जिम्मेदारी अब एकलव्य के पास है। यह कार्यक्रम अब होशंगाबाद जिले के अलावा मध्यप्रदेश के 13 अन्य जिलों के कुछ स्कूलों में चल रहा है। एकलव्य ने सामाजिक अध्ययन का छटवीं कक्षा के लिए एक प्रायोगिक पाठ्यक्रम तैयार कर इसी सत्र से कुछ स्कूलों में शुरू किया है।

प्राथमिक स्तर पर कक्षा 1, 2, 3 के लिए गणित और भाषा का भी नया पाठ्यक्रम तैयार किया गया है। यह पाठ्यक्रम भी प्रायोगिक तौर पर कुछ स्कूलों में चलाया जा रहा है। एकलव्य की यह मान्यता है कि स्कूली शिक्षा में रटने की बजाए ज्ञान को समझना, उसे हासिल करना तथा उपयोग में लाने का तरीका सीखना ज्यादा अर्थपूर्ण है। आज के जमाने में बच्चों को ज्ञान का भंडार बनाना अन्यायपूर्ण है, क्योंकि ज्ञान का भंडार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य अपने समाज, जीवन, मानव तथा पर्यावरण आदि के बारे में समझ विकसित करना है,और यह केवल स्कूली तंत्र में सीमित रहकर संभव नहीं है। इसीलिए एकलव्य ने स्कूल के बाहर भी समाज में शिक्षा का काम करना शुरू किया। विज्ञान यात्राएं, प्रदर्शनी, बाल मेले, विज्ञान क्लब, पुस्तकालय, गोष्ठियां, कार्यशाला आदि के माध्यम से कई ज्वलंत समस्याओं जैसे प्रदूषण, पर्यावरण, स्वास्थ्य, भोपाल गैस त्रासदी आदि पर जन साधारण में जानकारी फैलाने तथा समझ विकसित करने में पहल की है। कुछ अन्य अनियमित प्रकाशनों के अलावा चकमक का प्रकाशन इस पहल की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

इस समय मध्यप्रदेश में एकलव्य के 7 केंद्र हैं। ये केंद्र भोपाल के अलावा होशंगाबाद, हरदा, पिपरिया, उज्जैन, धार तथा देवास में कार्यरत हैं।

एकलव्य तथा होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के बारे में किसी और अंक में विस्तृत जानकारी देने की कोशिश करेंगे।

चकमक कैसे शुरू हुई?

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका का पहला अंक तो जुलाई 85 में आया था, पर वास्तविक शुरूआत उससे भी दो साल पहले ही हो चुकी थी।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में कार्यरत होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका का नाम बदलने के लिए एक प्रतियोगिता की गई। उस प्रतियोगिता में जो नाम आए उनमें चकमक भी एक था। होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका का नाम तो नहीं बदला, पर चकमक नाम बच्चों की पत्रिका के लिए चुन लिया गया।

चित्र : शिवेंद्र पंडिया, नवमीं, भोपाल

शिक्षकों के लिए एक बुलेटिन (पत्रिका) का प्रकाशन सन् 80 में शुरू हुआ। इसका नाम था 'होशंगाबाद विज्ञान।' यह देखा गया कि लोगों के साथ संवाद स्थापित करने के लिए पत्रिका एक अच्छा माध्यम है। पर बच्चों तक पहुंचने का ऐसा कोई माध्यम उपलब्ध नहीं था। धीरे-धीरे होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका में ही बच्चों के लिए कुछ सामग्री डालना शुरू किया गया। जैसे, माथापच्ची, विज्ञान की कहानियां, जीव जंतुओं की कहानियां आदि। बच्चों ने बड़ी संख्या में पत्रिका खरीदना शुरू किया। उनके पत्र भी आने लगे। पर एक ही पत्रिका के माध्यम से शिक्षक और बच्चों तक पहुंचना जरा मुश्किल था। अंत में तय किया गया कि बच्चों के लिए एक पत्रिका बिल्कुल अलग से निकाली जाए।

पत्रिका निकालना आसान काम नहीं है। पहली बात तो यह कि पत्रिका के लिए पाठक होना चाहिए और दूसरे, पत्रिका छापने के लिए पैसा। एक मोटे हिसाब–किताब से एक प्रति पर लगभग तीन रुपए लागत आती है। हम चाहते थे कि पत्रिका तुम्हें एक रुपए में उपलब्ध हो। पर यह संभव नहीं था। आखिरकार ढाई रुपए में बेचने का फैसला किया गया। उम्मीद थी कि घाटा विज्ञापन आदि लेने से पूरा हो जाएगा। मध्यप्रदेश शासन के एक निगम 'माध्यम' के साथ एक समझौता हुआ। समझौते के अनुसार 'माध्यम' पत्रिका के उत्पादन, छपाई, वितरण आदि की जिम्मेदारी उठाएगा, और एकलव्य संपादन की। 'माध्यम' उत्पादन का सारा खर्च वहन करने के लिए तैयार था। यह उन दिनों की बात है जब भोपाल में

यूनियन कार्बाइड के कारखाने से जहरीली गैस का रिसन हुआ था। एकलव्य ने इस गैस त्रासदी पर जनसाधारण की जानकारी के लिए काफी सामग्री का प्रकाशन किया। पोस्टर प्रदर्शनी आयोजित की। प्रकाशनों में प्रदर्शनी पर आधारित पुस्तिका, वैज्ञानिक तथ्य, पर्यावरण रिपोर्ट आदि शामिल थे। इन सब में गैस त्रासदी के संदर्भ में शासन की भूमिका पर भी सवाल उठाए गए थे। फलस्वरूप 'एकलव्य' पर कई गैर तार्किक आरोप लगाए गए। नतीजा यह रहा कि माध्यम के साथ मिलकर चकमक के प्रकाशन की योजना संभव न हो सकी।

कुछ दिनों बाद एकलव्य ने हिम्मत करके चकमक को अपने ही बल पर प्रकाशित करने का फैसला किया। मुख्य समस्या पैसे की थी। इसके लिए राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनालॉजी संचार परिषद (विज्ञान एवं तकनालॉजी विभाग, भारत शासन) से बात की गई। परिषद मदद करने के लिए तैयार हो गई।*

फिर वितरण के बारे में सोचा गया। अखबार तथा पत्रिका एजेंटों के पास जाने पर पता चला कि वे 50 प्रतिशत कमीशन मांगते हैं, यानी पत्रिका की एक प्रति पर 1.25 रुपए। यह तो घाटे का सौदा होता। तब यह विचार किया गया कि चूंकि पत्रिका आमतौर पर स्कूली बच्चों के लिए ही निकाली जा रही है, तब क्यों न सीधे शिक्षा विभाग व आदिम जाति कल्याण विभाग से संपर्क किया जाए। इन प्रयासों का यह फल निकला कि मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग और आदिम जाति एवं हरिजन कल्याण विभाग, अपनी सभी उच्चतर माध्यमिक एवं माध्यमिक शालाओं के लिए चकमक खरीदने के लिए तैयार हो गए।

अब शुरू हुआ काम। पर इतने बड़े पैमाने पर पत्रिका निकालने का अनुभव एकलव्य में किसी का भी नहीं था। पहले दो महीने तो लगभग हम लोग सीख ही रहे थे। दिन-रात काम करना पड़ा और आखिरकार चकमक का पहला अंक जुलाई, 85 में आ ही गया। इस अंक को मिलाकर चकमक के 16 अंक निकल चुके हैं। तुम देख ही रहे हो धीरे-धीरे चकमक की साज-सज्जा में सुधार हो रहा है। परिवर्तन हो रहे हैं। ये आगे भी जारी रहेंगे। इस समय हर महीने चकमक की 16,000 प्रतियां छपती हैं। इसमें से लगभग 12,500 शिक्षा विभाग द्वारा संचालित स्कूलों में और लगभग 3000 आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा संचालित स्कूलों में जाती हैं। इसके अलावा अलग-अलग शहरों के पुस्तक विक्रेता भी चकमक बेचने के लिए बुलवाते हैं। लगभग 400 प्रतियां देश भर में अलग-अलग शहरों में लोग अपने घर पर बुलवाते हैं। 100 प्रतियां राजस्थान की एक संस्था द्वारा अपने स्कूलों के लिए बुलवाई जाती हैं। हम कोशिश कर रहे हैं कि अन्य हिन्दी भाषी राज्यों के स्कूलों में भी चकमक बुलाई जाए। ■ ■

चित्र : शिवेंद्र पंडिया, नवमीं, भोपाल

*चकमक के जून अंक में 'आपस की बातें' में इस संदर्भ में भारत शासन के विज्ञान एवं तकनालॉजी विभाग का उल्लेख किया गया था। वास्तव में पैसा देने वाली संस्था राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनालॉजी संचार परिषद है। यह परिषद उक्त विभाग का ही एक हिस्सा है।

चकमक : लिखाई से छपाई तक

तुमने गांव में कुम्हार, लुहार या बढ़ई को काम करते देखा होगा। कुम्हार को एक घड़ा बनाने या बढ़ई को एक कुर्सी बनाने के लिए क्या-क्या तैयारी करनी पड़ती है, यह तुम जानते होगे। मिट्टी लाने से लेकर घड़ा आग में पकाने तक या लकड़ी से कुर्सी बनने तक एक लंबी प्रक्रिया होती है। इसमें समय भी लगता है। ठीक इसी तरह चकमक का एक अंक तैयार होने से लेकर प्रकाशित होने तक एक लंबी प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया के कई कदम हैं। हम यहां इसे समझाने का प्रयास कर रहे हैं।

सामग्री एकत्रित करना व चयन

यह प्रक्रिया का पहला कदम है। सामग्री प्राप्त करने के कई स्त्रोत हैं। जैसा कि तुम जानते हो चकमक में माथापच्ची, सवालीराम, मेरा पन्ना, अपनी प्रयोगशाला, कविता का पन्ना, एक मजेदार खेल, खेल-खेल में आदि नियमित स्तम्भ हैं।

कई छात्र जो पत्रिका के पाठक हैं, डाक से चित्र कविताएं, कहानियां, लेख, चुटकुले, कार्टून आदि भेजते हैं। मेरा पन्ना, रंग धनुष जैसे स्तम्भ इसी सामग्री से तैयार होते हैं। कभी-कभी कुछ सामग्री का उपयोग इन स्तम्भों के अलावा भी होता है।

कई शिक्षक और पालक भी चकमक पढ़ते हैं। वे भी हमें सामग्री भेजते हैं। जैसे-जैसे लोग चकमक के बारे में जानने लगे हैं वैसे-वैसे कवि, लेखक, चित्रकार, व्यंग्यकार आदि भी हमें मौलिक रचनाएं भेजने लगे हैं।

एकलव्य या अन्य किसी संस्था द्वारा आयोजित बाल मेलों या प्रतियोगिता में आई सामग्री का उपयोग भी चकमक में किया जाता है। चकमक के नवंबर, 85 तथा फरवरी, 86 के अंकों में ऐसी ही दो प्रतियोगिताओं में आई सामग्री का उपयोग किया गया था। सामग्री भी बहुत मजेदार ढंग से आती है। पोस्टकार्ड, अंतर्देशीय, कापी या डायरी के पन्नों पर ही रचना या चित्र बनाकर भेज दिए जाते हैं। कई बार लिफाफों पर डाक टिकट की जगह रसीदी टिकट लगी होती है। और कभी वह भी नहीं!

चित्र : शिवेंद्र पंडिया, नवमीं, भोपाल

प्राप्त होने वाली हर रचना का उपयोग नहीं हो पाता है और न ही संभव है। जिस रचना का उपयोग नहीं हो पाता, उसे भेजने वाले को पत्र द्वारा यह बताने या समझाने का प्रयास किया जाता है कि उसकी रचना का उपयोग क्यों नहीं हो पा रहा है या वह कैसी रचना भेजे। अगर भेजने वाले ने डाक टिकिट या लिफाफा साथ भेजा है तो उसे उसकी रचना वापस भी कर देते हैं।

इसी तरह चित्रों का चयन भी होता है। आमतौर पर चित्र पेड़, नदी, पहाड़ के या फिर जानवरों के होते हैं। रंग-बिरंगे या फिर पेन या पेंसिल से बने चित्र।

इसके अलावा हम अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित उपयोगी सामग्री का भी इस्तेमाल करते हैं। देश में ऐसी कई स्वैच्छिक संस्थाएं हैं जो विकास, शिक्षा, ग्रामीण तकनालॉजी, सामाजिक अध्ययन, पर्यावरण स्वास्थ्य तथा अन्य क्षेत्रों में काम कर रही हैं। वे अपने काम से उभरी जानकारी का प्रकाशन भी करती हैं। पर यह जानकारी बहुत कम लोगों तक पहुंचती है। हम ऐसी उपयोगी जानकारी को भी चकमक द्वारा प्रसारित करते हैं। उदाहरण के लिए 'टॉनिक' का लेख लोक विज्ञान संगठन, बंबई के एक परचे से लिया गया था। 'भगतसिंह की याद में' भी बंबई के एक अन्य संगठन द्वारा प्रकाशित पुस्तिका से लिया गया था। स्वास्थ्य के कई लेख हम डेविड वरनर की किताब 'जहां डाक्टर न हो' से लेते हैं। ऐसे और कई उदाहरण हैं।

एक समस्या जो हमारे सामने अक्सर होती है वह यह है कि अधिकतर जानकारी अंग्रेजी भाषा में होती है।

एक पत्रिका का संपादन कक्ष।

चकमक के संपादन में व्यस्त गोपाल राठी (बाएं) और राजेश उत्साही (दाएं)।

रेखांकन : अजीर्जुरहमान शेख, देवास
छाया चित्र : विनोद रायना

चकमक में कई लेख अंग्रेजी से अनुवाद करके ही छापे गए हैं। अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं जैसे मलयालम, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं से भी अनुवाद करके सामग्री प्रकाशित करते हैं।

संपादन

सामग्री चयन के बाद दूसरा कदम है संपादन का। संपादन का अर्थ है कि जो सामग्री चुनी गई है उसे इस योग्य बनाना कि वह सरल और सहज लगे।

पाठकों द्वारा भेजी गई रचनाओं में हम बहुत कम परिवर्तन करते हैं। अधिक से अधिक, भाषा तथा व्याकरण की गलतियां ही ठीक करते हैं। रचना का मूल रूप ज्यों का त्यों रहता है। नियमित स्तम्भों के अलावा दी जाने वाली सामग्री को किस तरह देना है यह तय किया जाता है। सारी सामग्री को साफ-साफ कागज पर लिख लिया जाता है।

चुनी हुई सामग्री जैसे कहानी, लेख, कविता आदि के लिए चित्रों की आवश्यता होती है तो वे बनवाए जाते हैं। पाठकों के जो चित्र प्रकाशित करने के लिए चुने जाते हैं, उनको ठीक किया जाता है। जैसे पेंसिल से बने चित्रों को काली स्याही से ठीक किया जाता है।

कंपोजिंग और प्रूफरीडिंग

सारी तैयार लिखित सामग्री को कंपोजिंग के लिए भेजा जाता है। कंपोजिंग का मतलब है सारी सामग्री को एक से आकार (या अन्य मनचाहे आकार) के अक्षरों से बने शब्दों में लाना। जैसे तुम यहां देख रहे हो कि इस लेख का शीर्षक, उपशीर्षक तथा बाकी का हिस्सा अलग-अलग आकार के अक्षरों में है। लिखित सामग्री भेजते समय उस पर निर्देश दिए जाते हैं कि सामग्री का कौन सा हिस्सा किस आकार के अक्षरों में चाहिए। चकमक की कंपोजिंग, फोटो कंपोजिंग प्रकार की होती है। इसमें अक्षरों का आकार 4 पाइंट (अक्षरों के आकार के लिए तकनीकी शब्द) से लेकर 216 पाइंट तक घटाया बढ़ाया जा सकता है। कुछ उदाहरण हम यहां दे रहे हैं। जब सारी सामग्री कंपोज हो जाती है तो उसे फिल्म पर उतार लिया जाता है। इस फिल्म से कागज पर उसका अमोनिया प्रिंट उतारते हैं। इसे प्रूफ कहते हैं। यह प्रेस से हमारे पास आता है। उसे पढ़कर देखते हैं कि उसकी कंपोजिंग में कहीं कोई गलती तो नहीं हुई है, या कोई शब्द या वाक्य छूट तो नहीं गया है। अगर ऐसा होता है तो वहां चिन्ह लगा देते हैं। यह सामग्री दुबारा भेजी जाती है और ठीक होकर आती है। अलग-अलग तरह की गलतियों/सुधार के अलग-अलग चिन्ह होते हैं।

एक पत्रिका की साज-सज्जा।

चकमक के इस अंक की सज्जा में व्यस्त जया विवेक।

पाइंट साइज

मोटा	चकमक 8 चकमक		पतला
	चकमक 10 चकमक		
	चकमक 12 चकमक		
	चकमक 14 चकमक		
	चकमक 16 चकमक		
	चकमक 18 चकमक		
	चकमक 20 चकमक		
	चकमक 22 चकमक		
	चकमक 24 चकमक		
	चकमक 30 चकमक		
	चकमक 36 चकमक		

कुछ उदाहरण हम यहां साथ में दे रहे हैं। यह सारी प्रक्रिया 'प्रूफरीडिंग' कहलाती है। यह बहुत मेहनत और धीरज का काम है। एक प्रूफ को बारी-बारी से दो-तीन लोग पढ़ते हैं, उसके बावजूद गलतियां रह जाती हैं।

चित्र

जो चित्र सामग्री के साथ देने होते हैं उन्हें प्रेस में भेज दिया जाता है। आवरण पृष्ठ के लिए चित्र आमतौर पर किसी से बनवाया जाता है और वह किसी मुख्य लेख से संबंधित होता है।

प्रेस में चित्रों के फोटो खींचकर उनकी फिल्म बनाकर इस्तेमाल किया जाता है। चित्रों को मनचाहे आकार में छोटा-बड़ा करवाया जा सकता है।

चित्रों के कुछ हिस्सों को उभारने के लिए स्क्रीन का इस्तेमाल किया जाता है। एक उदाहरण तुम पृष्ठ 15 पर छपे चित्र में देख सकते हो। स्क्रीन कई प्रकार की होती है।

इनका प्रयोग छपी सामग्री को उभारने या अलग दिखाने के लिए भी किया जाता है। इसका उदाहरण तुम पृष्ठ 38-39 पर देख सकते हो।

रंगीन चित्रों की छपाई अलग तरह से होती है। उसे हम इसी अंक में रंगीन छपाई शीर्षक से समझा रहे हैं।

साज-सज्जा और डमी बनाना

जब सारी लिखित सामग्री एवं चित्र अंतिम रूप में तैयार हो जाते हैं तो उससे डमी बनाई जाती है। डमी का मतलब है चकमक का वह अंक कैसा छपना है, उसका नमूना। सारी सामग्री तथा चित्रों के फोटो की एक-एक प्रति जिन्हें 'ब्ल्यू प्रिंट' कहा जाता है, प्रेस से हमारे पास आ जाती है। इस सामग्री को हम चकमक के आकार के पेजों पर टेप से चिपका देते हैं। जहां लाइन चाहिए होती है, वहां लाइन खींच देते हैं। डमी पर ही यह लिख दिया जाता है कि कौन-सा चित्र या उसको किस रंग में छपना

है। स्क्रीन कहां डालना है। यही डमी कहलाती है। इसे देखकर प्रेस में काम करने वाले व्यक्ति वैसे ही पेज फिल्म से बनाते हैं। इस फिल्म से प्लेट बनाई जाती है। इसी प्लेट से छपाई होती है।

छपाई

छपाई की कई पद्धतियां हैं। चकमक आफसेट पद्धति से छपती है। यह पद्धति छपाई की आधुनिकतम पद्धतियों में से एक है। इसके बारे में हम इसी अंक में अलग से बता रहे हैं।

चकमक तुम तक कैसे पहुंचती है?

हमारे पास मध्यप्रदेश के सारे स्कूलों के पतों की सूची है। इस सूची की कई प्रतियां हैं। हर महीने चार लोगों की एक टीम चकमक की एक-एक प्रति पर रैपर लगाकर पते की पट्टी चिपकाती है। फिर इन पर डाक टिकट लगाए जाते हैं। ऐसी लगभग 12,500 प्रतियां हर माह तैयार की जाती हैं। इसमें 7 से लेकर 10 दिन का समय लगता है। फिर उन्हें जीप में भरकर डाकघर में छोड़ आते हैं। वहां से वह पहुंचती हैं तुम्हारे स्कूल।

डाकघर में छोड़ने की एक निश्चित तारीख है, हर कभी नहीं छोड़ी जा सकतीं। क्योंकि डाकघर में जिस दिन चकमक जाती है उस दिन अतिरिक्त व्यक्तियों की जरूरत पड़ती है। चकमक हर महीने की 15 या 17 तारीख को डाकघर में डाली जाती है। जैसे यह अंक अक्टूबर की 15 या 17 तारीख को डाकघर में डाला गया होगा।

सही मायने में एक समय में एक साथ चकमक के तीन अंकों का काम चलता है। अक्टूबर का यह अंक जुलाई में तैयार हो रहा था। तब अगस्त का अंक छपकर आ गया था और डाक से भेजने के लिए तैयार किया जा रहा था। इसी समय में सितंबर का अंक छप रहा था।

यह थी चकमक के एक अंक के बनने की संक्षिप्त कहानी। ● ●

पाठकों को भेजने के लिए तैयार होती पत्रिकाएं।

चकमक, पाठकों को भेजने के लिए तैयार करते हुए कमलसिंह (बाएं) और हिमांशु विस्वास (दाएं)।

संपादन, कंपोजिंग और प्रूफरीडिंग त

(१) वर्षा रानी वर्षा रानी आज हमारे यहाँ आई।
विजय अजय से कहते।।
(२) देखो भाइयों आज हमारे खेत हसेंगे।
मानो हमारे खेतों को मीली है।।
आज आजादी देखो देखो।।।
नदीनाले ऐसे लगते जैसे चाँदी हो।।।
(३) गर्मी सह सह कर ऊब गये लोग।
वर्षा बूँद ऐसे लगती।।
जैसे वर्षा रानी दे रही हो पौधे राजकुमार
(४) चाँदी सी बूँदे पाकर घर से निकले।
नाचते किसान।।
लोखोट हो उठे किसान।।।
विनय
विनय चौरसिया
कक्षा ७ वी अ
शा० मा० उ० मा० शा० गाडरवारा

एक पाठक द्वारा भेजी गई कविता

वर्षा रानी)- 18 point Bold
वर्षा रानी, वर्षा रानी आज हमारे यहाँ आई।
विजय अजय से कहते॥
देखो भाईयो आज हमारे खेत हँसेंगे।
मानो हमारे खेतों को मिली है
आज आजादी देखो॥
नदी-नाले ऐसे लगते जैसे चांदी हो।
गर्मी सह-सह ऊब गए लोग।
वर्षा बूंदे ऐसे लगतीं।
जैसे वर्षा रानी दे रही हों पौधे राजकुमार॥
चांदी सी बूंदे पाकर घर से।
निकले नाचते किसान॥
विनय चौरसिया
कक्षा सातवीं, गाडरवारा

12 point light 7.5mm
10 point light

कंपोजिंग के लिए भेजी गई संपादित कविता

वर्षा रानी

वर्षा रानी, वर्षा रानी आज हमारे यहा आइ।
विजय अजय कहते हैं।।
देखो भाईयो आज हमारे खेत हसेगें।
मानो हमारे खेतों को मिली है
आज आजादी देखो।।
नदी नाले ऐसे लगने जैसे वांदी हो।
वर्षा ऐसे लगती।
जैसे वर्षा रानी दे रही हो राजकुमार।।
चांदी सा बूंद पाकर घर से।
निकले नाचते किसान।

विनय चौरसिया
कक्षा सातवीं, गाडरवारा

ं ई ँ ०/०० हँसेंगे च - गर्मी सह-सह ऊब गए लोग। बूँदें ं पौधे ी दें

कंपोज कविता का प्रूफ और उसकी प्रूफरीडिंग

वर्षा रानी

वर्षा रानी, वर्षा रानी आज ह
विजय अजय कहते हैं।।
देखो भाईयो आज हमारे खेत
मानो हमारे खेतों को मिली है
आज आजादी देखो।।
नदी-नाले ऐसे लगते जैसे चां
गर्मी सह-सह ऊब गए लोग।
वर्षा बूंदें ऐसे लगतीं
जैसे वर्षा रानी दे रही हों पौ
चांदी सी बूंदे पाकर घर से
निकले नाचते किसान।।

कक्षा स

सुधार और अंतिम

प्रूफरीडिंग के कुछ चिन्ह

ᔕ	निकाल दें	)	कोष्टक लगाएं	#	अलग करें, जगह छोड़ें	{	पंक्ति
⁀	मिला दें	⋏	छूट गया है, डालें	‖	पंक्ति सीधी करें	[	नया
(।)	पूर्ण विराम	(,)	अर्ध विराम	“ ”	उद्धरण चिन्ह दें	(–)	हाइ

था चित्र ठीक करना

वर्षा रानी

वर्षा रानी, वर्षा रानी आज हमारे यहा आई।
विजय अजय कहते हैं।।
देखो भाईया आज हमारे खेत हसेगे।
मानो हमारे खेतों को मिली है
आज आजादी देखो।।
नदी नाले ऐसे लगने जैसे बांदी हो।
वर्षा ऐसे लगती।
जैसे वर्षा रानी दे रही हो राजकुमार।।
चांदी सा बूंद पाकर घर से।
निकले नाचते किसान।

विनय चौरसिया
कक्षा सातवीं, गाडरवारा

कंपोज होकर आई कविता

ारे यहां आई।
हसेंगे।
ा हो।
राजकुमार।।
वनय चौरसिया
वीं, गाडरवारा
प
बद्ध करें
ैराग्राफ
न दें

एक पाठक द्वारा भेजा गया चित्र।

चित्र : जगदीश प्रसाद नामदेव, सातवीं, मनकापुर

ठीक किया गया चित्र।

छपाई का इतिहास

रबर मोहर या स्टेंसिल तुमने अपने स्कूल या कहीं और देखा ही होगा। पेंसिल से लिखा मिटाने वाली रबर को काट-पीटकर कभी अपने नाम की मोहर भी बनाई होगी। होली पर आलू में 420 या गधा लिखकर तुमने ठप्पे तो जरूर लगाए ही होंगे। बस, छपाई की शुरूआत भी कुछ ऐसे ही हुई।

मूल रूप से छपाई के लिए तीन चीजों की जरूरत होती है–(1) एक चिकनी सतह, जिस पर छपाई संभव हो, जैसे, कागज (2) छपाई की स्याही (3) जिस चीज को छापना है उसका ठप्पा यानी ब्लाक।

प्राचीन समय में कागज नहीं था परंतु स्याही और ब्लाक जरूर थे। पर इन ब्लाकों का उपयोग मोहर यानी सील के रूप में ही होता था। ऐसी कई मोहरें पुरानी सभ्यताओं की खुदाई में प्राप्त हुई हैं। जैसे, मोहन जोदड़ो में।

उन दिनों मिश्र के लोग पेपाइरस से बने पन्नों पर लिखते थे। मई अंक में तुमने पढ़ा होगा कि पेपाइरस नदी किनारे उगने वाला एक पौधा है। जहां पेपाइरस उपलब्ध नहीं था वहां मृत जानवरों की सूखी खाल का उपयोग किया जाता था।

उस समय लिखने-पढ़ने का काम दो क्षेत्रों में अधिक था–एक शासन और दूसरा धार्मिक ग्रंथों की बातों के प्रचार-प्रसार में। इसमें लिखने का अधिकांश काम हाथ से ही होता था। इसमें समय बहुत लगता था और सामग्री की प्रतियां भी कम बन पाती थीं। यही समस्या चीन के शासकों और धार्मिक कार्यों से जुड़े लोगों के सामने आई। वे बुद्ध के उपदेशों और संदेशों को फैलाना चाहते थे। प्रारंभ में इसके लिए सील बनाई गईं। जगह-जगह धातु और पत्थरों के ऐसे स्तंभ बनवाए गए जिन पर बुद्ध के उपदेश खुदे थे। यह लगभग 1500-1800 साल पहले की बात है। उसी समय भारत में भी सम्राट अशोक ने ऐसे कई स्तम्भ बनवाए पर इन माध्यमों से अधिक लोगों तक नहीं पहुंचा जा सकता था।

चीन में कागज का आविष्कार कई साल पहले हुआ था और लोग स्याही से भी परिचित थे। इस स्थिति में कुछ ही समय में लकड़ी के ब्लाक बनने लगे। ब्लाक बनाने का तरीका बहुत सरल था। लकड़ी के एक पटिए पर चावल की लेई फैलाई जाती थी। छापने वाली सामग्री को एक कागज पर लिखकर, कागज को लिखी हुई सतह की तरफ से लेई पर रख दिया जाता था। कागज पर लिखे शब्दों के निशान लेई पर उतर आते थे। इन

निशानों को छोड़कर लकड़ी की सतह के बाकी हिस्से को काट लिया जाता था। इस तरह एक सील या ब्लाक बन जाता था। इस ब्लाक पर स्याही फैलाकर कागज पर छपाई की जा सकती थी। आठवीं से दसवीं शताब्दी तक चीन में बुद्ध के उपदेशों के कई ग्रंथों की छपाई इसी तरीके से हुई।

पर इस तरीके में कई खामियां थीं। जैसे, हर बार नया ब्लाक बनाने से अक्षरों के आकार में परिवर्तन आ जाता था। कुछ और समय बीतने पर (अबसे लगभग 950 साल पहले) एक चीनी रसायन शास्त्री पी शेंग ने अलग-अलग अक्षरों के ऐसे छोटे ब्लाक या टाइप बनाए जिनका उपयोग बार-बार किया जा सकता था। उन्होंने ये टाइप चिकनी मिट्टी और गोंद से बनाए। अक्षरों के इन टाइपों को एक लोहे की चादर पर मोम, गोंद आदि डालकर इच्छानुसार शब्दों में जमाया जा सकता था। चादर को गरम करके ठंडा करने पर टाइप चादर पर चिपक जाते थे। छपाई के बाद इन अक्षरों को निकालकर फिर से उपयोग में लाया जाता था। 200 साल के भीतर ही चीनी अक्षरों के ऐसे 60,000 टाइप बनकर तैयार हो गए। ये टाइप लकड़ी से बने थे। चीन के पड़ोसी देश कोरिया में धातुओं के टाइप बनाए गए। खासकर कांसे के। यहां लगभग एक लाख ऐसे टाइप बनाए गए।

इस तरह छपाई का आविष्कार और विकास चीन में हुआ। चीन से छपाई तकनीक की जानकारी धीरे-धीरे अन्य देशों में फैलने लगी। हालांकि चीनीवासी यह नहीं चाहते थे कि यह जानकारी चीन से बाहर जाए। अरब-वासियों को कुछ चीनी कैदियों से यह जानकारी प्राप्त हुई। ये कैदी समरखंड की जेलों में बंद थे। यह लगभग 1250 साल पहले की बात है। अगले 500 साल में

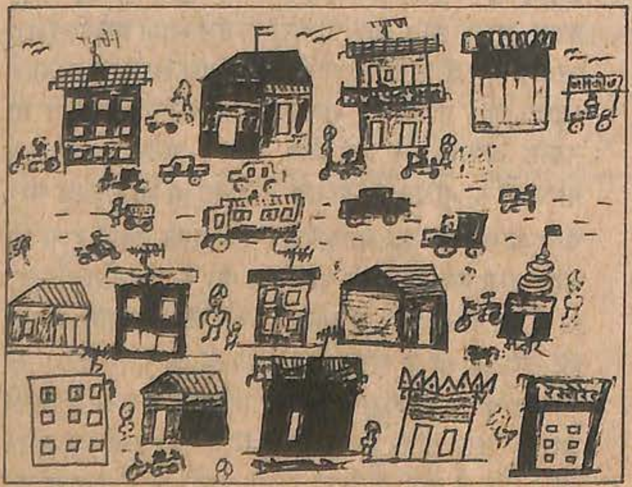

चित्र : महेन्द्र सिंह कर्णधार, सातवीं नामली (रतलाम)

बगदाद और अन्य शहरों में कागज बनने लगा। अरब से यह जानकारी यूरोप पहुंची, और तेरहवीं शताब्दी में यूरोप के कई देशों में कागज के कारखाने खड़े हो गए। टाइप और ब्लाक बनाने की तकनीक की जानकारी वहां बाद में पहुंची।

यूरोप में धार्मिक चित्रों के ब्लाक ही अधिक बनते थे। धीरे-धीरे चित्रों के साथ कुछ लिखित सामग्री भी दी जाने लगी। फिर चित्रों का महत्व कम होता गया और लिखित सामग्री बढ़ती गई।

पंद्रहवीं शताब्दी के आते-आते छपाई तकनीक इतनी विकसित हो चुकी थी कि कई पन्नों की किताब छापना संभव हो गया।

छपाई तकनीक का विकास यूरोप में अधिक तेजी से हुआ। क्योंकि चीनी भाषा के मुकाबले यूरोपीय भाषाओं की वर्णमाला में कम अक्षर थे। चीनी भाषा में कई हजार अक्षरों के टाइप बनाना होते थे। जबकि यूरोपीय भाषाओं में इनकी संख्या 50 से भी कम थी।

छोटे-छोटे अक्षरों को लकड़ी पर काटना भी एक मुश्किल काम था। इनको बनाने का एक और तरीका विकसित हुआ। पहले अक्षरों के पीतल या कांसे के नमूने बनाए जाते। इन नमूनों में चीनी मिट्टी या सीसे के सांचे बनाए जाते थे। सांचों से बड़ी संख्या में अक्षर बनाए जा सकते थे। सांचों में पिघला सीसा भरा जाता। ठंडा होने पर सीसा कठोर हो जाता। इससे हरेक अक्षर के सभी टाइप एक जैसे ही बनते थे। यह हुई कागज और अक्षर बनाने की बात। इसके साथ-साथ छपाई के तरीकों में भी विकास हो रहा था। शुरू में ब्लाक पर ब्रुश द्वारा स्याही फैलाकर उस पर कागज रखकर, कागज को दबाया जाता था। लगभग 550 साल पहले गुटेनबर्ग ने फ्रांस में छपाई की एक मशीन का आविष्कार किया। इस मशीन में दो सतह थीं। एक सतह पर ब्लाक रखा जाता था और दूसरी सतह को एक पेंच द्वारा ऊपर-नीचे किया जा सकता था। ब्लाक के ऊपर कागज डालकर पेंच कसने पर कागज ब्लाक पर दबता था। इस तरह कागज पर ब्लाक का निशान आ जाता था। गुटेनबर्ग ने भी सबसे पहले धार्मिक ग्रंथों की छपाई की। उसका गुटेनबर्ग बाइबल इनमें मशहूर है।

अगले 50 साल बीतते-बीतते इस मशीन में भी बहुत परिवर्तन हुए। लकड़ी के पेंच के स्थान पर लोहे का पेंच उपयोग में लाया जाने लगा। अठारहवीं शताब्दी के आते-आते छपाई की मशीनें लोहे की बनने लगीं। बिजली उपलब्ध होने पर छपाई की तकनीक और मशीन में बहुत परिवर्तन हुए।

लेटर प्रेस

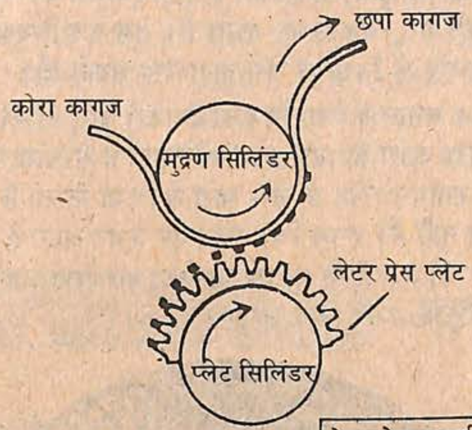

लेटर प्रेस छपाई

लेटर प्रेस यानी अक्षर मुद्रण छपाई की सबसे प्राचीन विधि है। तुम अपने गांव या कस्बे में जो छापेखाने देखते हो वे इसी तरह के हैं। इनमें आमतौर पर पर्चे, रसीद गड्डी, बिलबुक, निमंत्रण पत्र आदि ही छपते हैं। छोटी पत्रिकाएं, अखबार और किताबें आदि भी इन्हीं में छपती हैं।

लेटर प्रेस प्रणाली में धातु से निर्मित विभिन्न आकार के अक्षरों का उपयोग किया जाता है। इन्हें टाइप कहा जाता है। टाइप के निर्माण में मुख्य रूप से सीसा धातु का उपयोग किया जाता है। चूंकि यह धातु मुलायम होती है, अतः इसमें कड़ापन लाने के लिए रांगा तथा एंटीमनी धातु मिलाई जाती है।

पहले अलग-अलग टाइपों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। अब इन्हें अलग-अलग पाइंट के आधार पर जाना जाता है। एक इंच के छठे भाग को एक 'एम्' कहा जाता है, यानी एक इंच में छह 'एम' होते हैं। एक एम को 12 से भाग देने पर जो भागफल आता है उसे एक पाइंट कहा जाता है यानी एक पाइंट, एक इंच का 1/72 वां भाग होता है।

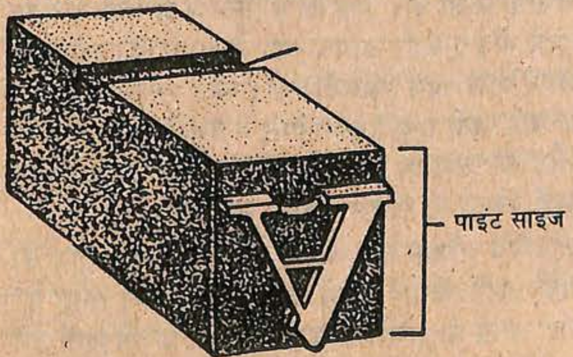

अंग्रेजी वर्णमाला के A का टाइप

करके देखो

एक रबर लो। उसकी एक सतह पर एक बड़ा बिंदु बनाओ। अब बिंदु को छोड़कर रबर की शेष सतह को काट लो। ताकि बिंदु वाली जगह उभरी रहे। अब बिंदु पर स्याही डालो। ध्यान रहे कि स्याही कटी हुई सतह पर न फैले। अब रबर को एक कागज के पन्ने पर दबाओ। कागज पर बिंदु की छाप मिलेगी।

इसे रिलीफ छपाई कहते हैं। रिलीफ छपाई में छपने वाली सामग्री सतह से उभरी हुई रहती है। लेटर प्रेस रिलीफ पद्धति पर ही आधारित है।

□

एक रबर लो। उस पर मोम के क्रेयान (रंगीन चाक) से एक बिंदु बनाओ। अब रबर को पानी से गीला करो। तुम देखोगे कि पानी रबर की सतह पर फैलता है, पर बिंदु वाले हिस्से से हटता है। अब रबर पर एक कागज रखकर कागज को नाखून से घिस लो। कागज पर उस बिंदु की छाप आ जाएगी।

छपाई का यह तरीका लिथोग्राफी कहलाता है। लिथोग्राफी में छपने वाली सामग्री सतह के समतल ही होती है, उभरी हुई नहीं। छपाई इस आधार पर संभव होती है कि ग्रीस और पानी आपस में मिलते नहीं हैं। क्रेयान भी ग्रीस युक्त होता है इसलिए लिखी जगह पर पानी नहीं फैलता। आफसेट छपाई लिथोग्राफी पद्धति पर आधारित है।

□

एक रबर लो। उस पर बड़ा बिंदु बनाओ। अब बिंदु वाले हिस्से को काटकर रबर में एक छोटा गड्ढा बना लो। इस गड्ढे में स्याही भरो। अब रबर पर एक कागज रखो और दबाओ, कागज पर बिंदु की छाप आ जाएगी।

छपाई का यह तरीका इंटेग्लियो कहलाता है। इसमें छपने वाली सामग्री सतह से नीचे होती है। फोटोग्रेव्योर छपाई इंटेग्लियो पद्धति पर ही आधारित है।

ये टाइप प्रेस में लकड़ी के एक केस में रखे होते हैं। केस में कई सारे खाने होते हैं और एक खाने में एक प्रकार के अक्षर रखे होते हैं। इनको रखने का भी एक खास तरीका होता है।

मान लो हम एक निमंत्रण पत्र छापना चाहते हैं। प्रेस में कंपोजिटर (अक्षरों को जमाने वाला व्यक्ति) आवश्यकतानुसार एक-एक अक्षर चुनकर उनको शब्दों के रूप में एक क्रम से 'स्टिक' नामक एक छोटी सी पट्टी पर जमाता जाता है। यह प्रक्रिया कंपोजिंग कहलाती है। सभी अक्षर एक ही आकार के होते हैं ताकि साथ रखने पर वे एक ही लाइन में आएं। लाइन

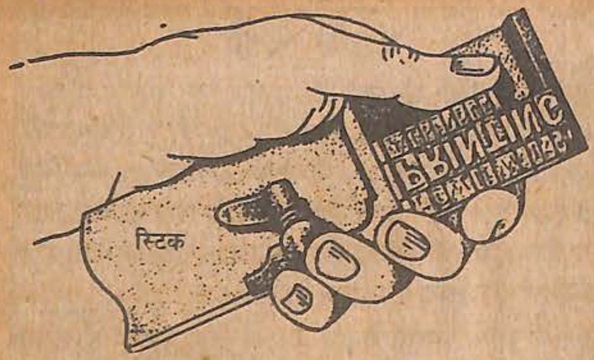

कितनी लंबी होगी यह पहले से तय होता है। शब्दों के बीच जगह रखने के लिए धातु की बनी 'स्पेश' डाली जाती हैं। ये टाइप के आकार की होती हैं। लाइनों के बीच जगह रखने के लिए धातु या लकड़ी की पट्टियों का उपयोग किया जाता है।

जब सारे शब्द जम जाते हैं तो उन्हें निमंत्रण पत्र की चाही गई डिजाइन के अनुसार सजाया जाता है। इसे पेज बनाना कहते हैं। इस पेज को एक शिकंजे में कसकर छपाई की मशीन जिसे ट्रेडल कहते हैं, पर चढ़ाया (लगाया) जाता है। मशीन पर चढ़े इस पेज को (ये दो भी हो सकते हैं) फार्म कहते हैं।

कंपोजिंग का काम आजकल मशीनों से भी होता है। कंपोजिंग की ऐसी दो मशीनें हैं, लाइनोटाइप और मोनोटाइप।

लाइनोटाइप मशीन का आविष्कार अब से लगभग सौ साल पहले ओत्मरं मर्जेन्थैलर ने अमरीका में किया। इस मशीन में धातु की पूरी शब्द पंक्तियां तैयार होती हैं। मशीन में टाइप राइटर के समान एक की-बोर्ड होता है। जब की-बोर्ड की चाबियों को सामग्री के अनुसार दबाते हैं तो उसमें बने अक्षर के सांचों में पिछला सीसा भर जाता है और ठंडा होने पर उस अक्षर का टाइप प्राप्त होता है।

मोनोटाइप का आविष्कार लाइनोटाइप के आविष्कार के दो साल बाद टॉलबर्ट लैंस्टन ने किया। यह भी लाइनोटाइप की तरह ही काम करता है, परंतु इसमें एक पंक्ति के बजाए हरेक अक्षर अलग होता है। इन अक्षरों को जोड़कर शब्द और फिर पंक्ति बनाई जाती है।

कंपोजिंग की एक और विधि है, जिसे फोटो कंपोजिंग कहते हैं।

पहले तस्वीरों को छापने के लिए उन्हें लकड़ी पर तराश कर बनाया जाता था। फिर लकड़ी के स्थान पर धातु की प्लेटों का उपयोग होने लगा। आजकल चित्रों की छपाई ब्लाक से की जाती है। ब्लाक, कैमरा तथा रासायनिक क्रियाओं के माध्यम से धातु प्लेट पर ही बनाया जाता है। यह तब संभव हुआ जब विलियम टेल्बट नामक एक व्यक्ति ने स्क्रीन का इस्तेमाल शुरू किया। स्क्रीन एक जाली होती है जो चित्र को छोटे-छोटे टुकड़ों (बिंदुओं) में बांटती है। इन बिंदुओं को साथ में छापने पर चित्र उभर आता है। तुम इन बिंदुओं को अखबार के चित्रों में लेंस द्वारा देख सकते हो।

ब्लाक बनाने के लिए चित्र को कैमरे से धातु की प्लेट पर उतारा जाता है। इस प्लेट को रसायनों से धोया जाता है। रसायन प्लेट के उस भाग से क्रिया करता है जहां चित्र नहीं है। इससे चित्र प्लेट पर उभर आता है। इस प्लेट को लकड़ी के आधार पर फिट कर दिया जाता है। ब्लाक के ऊपर चित्र उल्टा होता है।

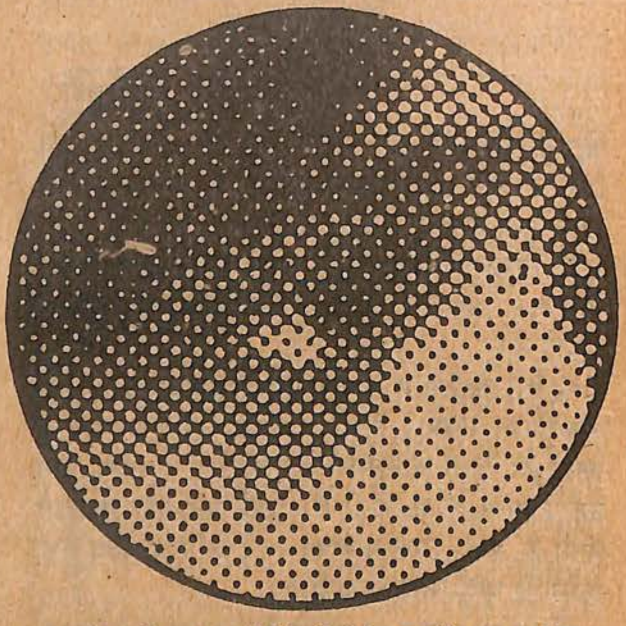

इस चित्र में शायद तुम्हें बिंदुओं के सिवाय और कुछ न दिख रहा हो। चकमक को अपनी आंख से दो–तीन फुट की दूरी पर रखकर देखो।

छपाई की मशीनें भी कई किस्म की हैं। लगभग 180 साल पहले चार्ल्स नामक एक व्यक्ति ने लोहे की छपाई मशीन बनाई। इस मशीन को भाप इंजन की मदद से चलाया जाता था। शुरू की मशीनों में दो समतल सतह होती थीं। एक पर कागज रखा जाता था और दूसरी पर छपने वाले फार्म (सामग्री) को। प्लेट पर स्याही डालने के बाद दोनों सतहों को आपस में दबाने पर कागज पर प्लेट की छाप आ जाती थी। ऐसी मशीनें आज भी हैं। इन्हें प्लेटन या ट्रेडिल मशीन कहा जाता है।

फ्रीडरिच नामक एक व्यक्ति ने एक अन्य मशीन का आविष्कार किया। इसमें फार्म एक समतल सतह पर रखा जाता था। जिस कागज पर छपाई करनी होती उसे एक सिलिंडर (बेलन) पर लपेटा जाता। सिलिंडर को

समतल फार्म पर चलाने पर कागज पर छपाई होती थी। इसे फ्लेट बेड प्रेस कहते हैं। इस मशीन में अधिक छपाई करने पर फार्म के टाइप घिस जाते थे। विलियम गेड्स नामक एक व्यक्ति ने फार्म का प्रतिरूप (डुप्लीकेट या स्टीरियो टाइप प्लेट) बनाया। मूल फार्म को सुरक्षित रखा जाता और स्टीरियो टाइप छपाई के लिए इस्तेमाल किया जाता था। एक स्टीरियो टाइप के घिस जाने पर मूल फार्म से दूसरा स्टीरियो टाइप बनाया जा सकता था।

धीरे-धीरे प्लेट भी बेलनाकार बनने लगीं। समतल सतह की बजाए दो सिलिंडर इस्तेमाल होने लगे। एक सिलिंडर पर प्लेट कसी जाती और एक पर कागज। इस तरह की प्रेस को सिलिंडर प्रेस या रोटरी प्रेस कहा जाता था। इसके आविष्कारक थे एक अमरीकी रिचर्ड हो।

छपाई की मशीन भी छोटी या बड़ी होती हैं। ट्रेडल मशीन पर एक साथ एक या दो पृष्ठ छाप सकते हैं। फ्लेट बेड और अन्य बड़ी प्रेसों में चार या आठ पृष्ठ एक साथ छाप सकते हैं।

आफसेट प्रेस

आफसेट प्रणाली छपाई की आधुनिकतम पद्धति है। इसके विकास की भी दिलचस्प कहानी है। लगभग 185 साल पहले म्यूनिख (जर्मनी) में एलॉटस सेनेफेल्डर नामक एक व्यक्ति संगीत के स्वर संकेत छापने का प्रयास कर रहा था। छपाई में वह एक ऐसी स्याही का इस्तेमाल कर रहा था, जो मोम और काले कार्बन के मिश्रण से बनी थी। वह अपने प्रयोग में असफल रहा।

पर सेनेफेल्डर ने प्रयोग के दौरान देखा कि जहां मोम वाली स्याही पड़ी थी वहां पानी बिल्कुल नहीं फैल रहा है। यानी मोम वाली स्याही और पानी एक दूसरे से मिल नहीं रहे हैं। इसी सिद्धांत पर आगे चलकर लिथोग्राफी प्रणाली का आविष्कार हुआ।

लिथोग्राफी प्रणाली में छपने वाली सामग्री प्लेट पर न तो उभरी हुई होती है और न ही खुदी हुई, बल्कि वह प्लेट की सतह के समतल ही होती है। प्लेट की समतल सतह पर छपने वाले हिस्से और खाली हिस्से में अंतर रखना होता है। अंतर न रखने पर स्याही प्लेट पर फैल जाएगी। इसके लिए छपने वाले हिस्से पर एक मोम युक्त पदार्थ फैलाया जाता है। इससे स्याही केवल छपने वाले हिस्से पर ही फैलती है।

आफसेट प्रणाली में लिथोग्राफी प्रणाली का सिद्धांत इस्तेमाल किया जाता है।

लिथोग्राफी छपाई मशीन में प्लेट सिलिंडर से लगा एक और रबर का सिलिंडर होता है जो उसे छूता है। लगभग 80 साल पहले अमेरिका के ईरारुबल नामक व्यक्ति ने देखा कि प्लेट सिलिंडर का बिंब रबर सिलिंडर पर छपता है। उसने इस रबर सिलिंडर पर उभरे बिंब से छपाई की कोशिश की। वह इसमें सफल रहा। यही आफसेट प्रणाली है।

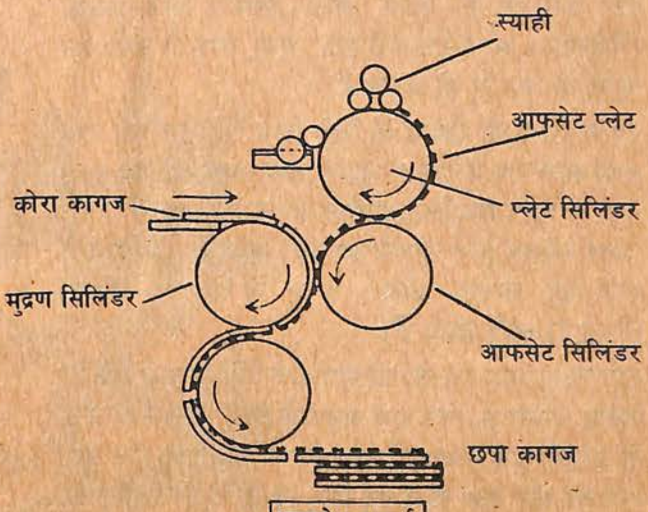

आफसेट छपाई

आफसेट छपाई मशीन में तीन सिलिंडर होते हैं। एक प्लेट सिलिंडर, दूसरा मुद्रण सिलिंडर और तीसरा आफसेट सिलिंडर। प्लेट सिलिंडर से आफसेट सिलिंडर पर इम्प्रेशन पड़ता है। इस इम्प्रेशन से छपाई होती है।

छापने वाली सामग्री को फोटो कंपोजिंग विधि से कंपोज कराया जाता है। यह काम एक छोटे से कम्प्यूटर नियंत्रित मशीन द्वारा किया जाता है। इस मशीन में भी टाइपराइटर की भांति एक की-बोर्ड होता है। सारी सामग्री अंत में एक फिल्म पर कंपोज होकर प्राप्त होती है। छपने वाले चित्रों की भी कैमरे से फोटो लेकर फिल्म बनाई जाती है।

लिखित सामग्री और चित्र की फिल्म से पेज बनाए जाते हैं। इन पेजों की फिल्म से छपाई के लिए प्लेट बनाई जाती है। इन प्लेटों को साफ करके दुबारा इस्तेमाल किया जा सकता है। प्लेट को मशीन के सिलिंडर पर कसा जाता है और फिर छपाई होती है। चकमक इसी विधि से छपती है।

रंगीन छपाई

आमतौर पर तुमने देखा होगा कि अधिकांश छपी सामग्री एक ही रंग (अधिकतर काली) की होती है। पर कभी-कभी दो रंगी या बहुरंगी भी होती है। आफसेट प्रणाली में यह कैसे होती है?

तुम जानते हो कि सफेद रंग सात रंगों के जोड़ से बनता है। और अगर हम दो रंगों को मिला दें तो एक तीसरा रंग उभर आता है। रंगीन छपाई इसी सिद्धांत पर आधारित है। रंगीन छपाई में काले रंग के अलावा तीन मूल रंग इस्तेमाल किए जाते हैं। ये पारदर्शी होते हैं। ये तीन मूल रंग हैं- पीला, नीला (सायन) और गुलाबी (मैजेन्टा)। अन्य रंग जैसे हरा, भूरा, जामुनी आदि इन चारों के मेल से ही बनते हैं।

रंगीन चित्र की छपाई के लिए चित्र को तीन मूल रंगों तथा काले रंग में अलग-अलग किया जाता है। यह काम एक कंप्यूटर नियंत्रित मशीन से किया जाता है जिसे कलर स्कैनर (रंग जांचने का यंत्र) कहते हैं। इस यंत्र में रंगों को अलग- अलग करने के लिए छलनियां (फिल्टर) लगी होती हैं।

सादे चित्र (एक रंग के) की छपाई के लिए उसकी एक ही फिल्म बनती है। पर जब बहुरंगी चित्र छापना होता है तो उसकी एक के बजाए-चार फिल्म बनती हैं, तीन मूल रंगों की और एक काले रंग की। छपाई के लिए इन चार फिल्मों से चार प्लेट बनती हैं।

सबसे पहले कागज पर पीले रंग की प्लेट से छपाई की जाती है। फिर उसी पर गुलाबी रंग की प्लेट से,फिर नीले रंग की प्लेट से,और अंत में काले रंग की प्लेट से। यानी रंगीन चित्र उभारने के लिए चार बार छपाई करनी होती है।

रंगीन छपाई की यह प्रक्रिया हमने इस अंक के आवरण पर समझाने की कोशिश की है।

चकमक के आवरण को पूरा फैलाओ। आवरण पर लिखे 'चकमक' के चार अक्षर क्रमशः 'च' पीला, 'क' गुलाबी, 'म' नीला मूल रंग हैं,और 'क' चौथा काला रंग।

अब मोर के चित्र को देखो। उसके आगे का हिस्सा पूरा बहुरंगी छपाई (बहुत से रंग या यूं कहें कि चार रंग) में है। पर उसके पहले तीन हिस्से रंगीन छपाई की प्रक्रिया बताते हैं। पहले खाने में केवल पीला रंग है। कुछ जगह सफेद छूटी हुई है। दूसरे खाने में पीले पर गुलाबी की छपाई हुई है। तीसरे खाने में पीले, गुलाबी पर नीले रंग से छपाई हुई है। आखिर में इन तीनों रंगों पर काले रंग से छपाई की गई है।

लेटर प्रेस में इस तरह के रंगीन चित्र को छापने के लिए तीन मूल रंगों और काले रंग के अलग-अलग चार ब्लाक (फिल्म नहीं) बनाए जाते हैं। इन्हीं ब्लाक से बारी-बारी से चार बार छपाई होती है। जिससे रंगीन चित्र उभर आता है।

आफसेट प्रणाली में भी छपाई की मशीनें कई तरह की हैं। कई मशीनें ऐसी हैं जो एक बार में केवल एक रंग ही छापती हैं। दूसरे रंग की छपाई के लिए उसी कागज को दुबारा मशीन में भेजना होता है। चकमक ऐसी ही मशीन पर छपती है।

पर ऐसी मशीनें भी हैं जहां कागज एक बार मशीन में जाता है और सभी रंग छपने पर ही बाहर निकलता है। यानी कागज पहले एक सिलिंडर पर रहता है जहां एक रंग छपता है,फिर वह दूसरे सिलिंडर पर जाता है वहां दूसरा रंग छपता है। इस तरह चार सिलिंडरों पर से गुजरने के बाद पूरा रंगीन चित्र छपकर बाहर निकलता है।

चकमक के सितंबर और अक्टूबर,85 के अंक ऐसी ही मशीन पर छपे थे।

आफसेट की सबसे आधुनिक मशीन ऐसी है जिस पर कागज के दोनों ओर एक साथ छपाई हो जाती है।

चित्र : सोनाली पहारे, चौथी, सेमरी हरचंद (होशंगाबाद)

एक मजेदार खेल

आलू से छपाई

आलू से तुम दीवार पर या कागज पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे की छपाई कर सकते हो। कुछ आलू लो। आलू अपनी डिजाइन के आकार के हिसाब से लेना। आलूओं को बीच से काटकर दो-दो हिस्सों में बांट लो। इन टुकड़ों को कटे हुए सिरे की तरफ से सोख्ता कागज पर उल्टा करके रख दो। इससे आलू में जो अतिरिक्त नमी और रस होगा कागज सोख लेगा। अब इस सतह पर जो समतल होगी, कोई भी फूल का चित्र बना लो। जिस हिस्से में फूल नहीं, उसे काटकर अलग कर दो। यह चित्र वाला आलू रबर मोहर की तरह लगेगा।

दूसरे हिस्से पर पत्तियां बना लो। अब आलू से बनी इन स्टेंशिल से कागज या दीवार पर विभिन्न डिजाइन बना सकते हो।

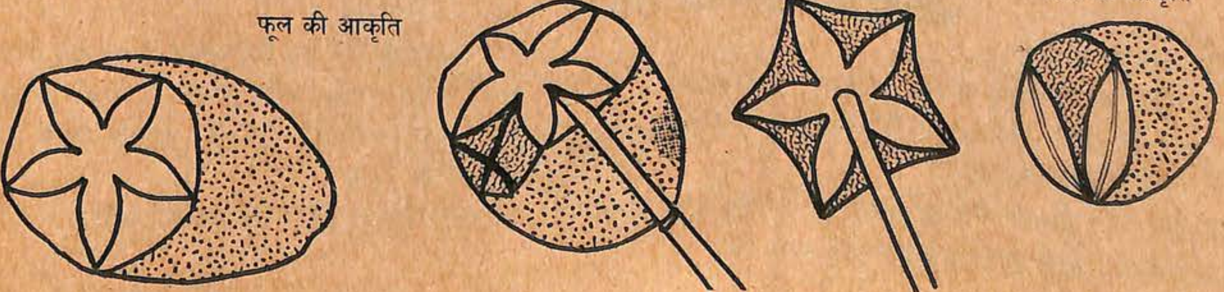

योगासन

लुढ़कना

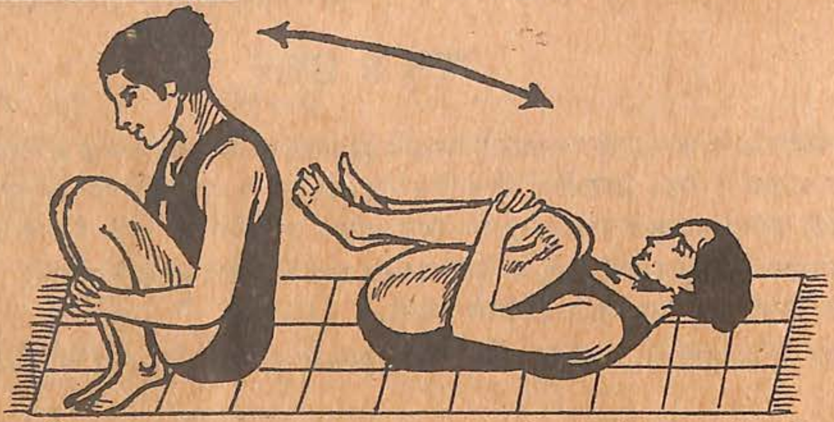

- पंजों पर उकडूं बैठ जाओ।
- दोनों हाथों की उंगलियां मिलाकर घुटनों के ऊपर पकड़ लो।
- अब घुटनों को आगे सिर की ओर गतिशील करो और आगे-पीछे झूलो।
- जब आगे आओ तो इतना आगे आने का प्रयास करो कि पैर के पंजों पर बैठ सको।
- 10 से 15 बार करो।

अद्वासन

- पेट के बल लेट जाओ।
- दोनों भुजाओं को सामने इस प्रकार फैलाओ कि वे कान को स्पर्श करती रहें। एड़ी एवं पंजे आपस में मिले हुए रहें।
- संपूर्ण शरीर को शिथिल छोड़ दो।
- आसन के दौरान ध्यान श्वास-प्रश्वास पर लगाओ।

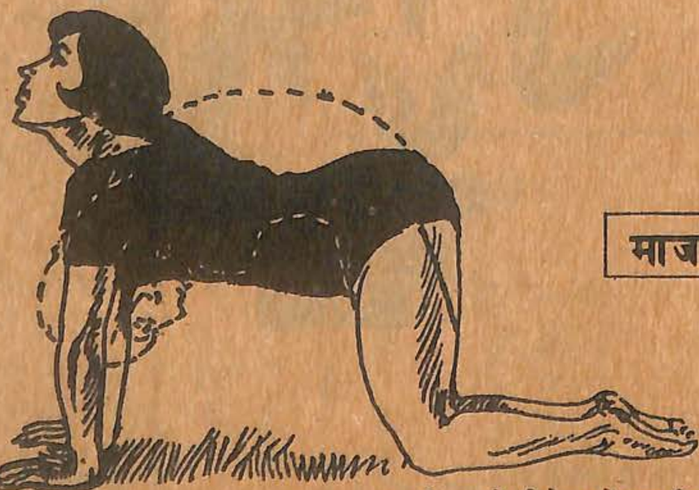

मार्जारि आसन

- वज्रासन में बैठो।
- घुटनों के बल खड़े होकर हाथों को सामने जमीन पर इस प्रकार जमाओ कि ठीक कंधों के नीचे रहें। हाथों को सीधा रखो।
- रीढ़ की हड्डी को नीचे झुकाते हुए सिर को ऊपर उठाओ। ऐसा करते समय श्वास अंदर लो।
- सिर को नीचे लाते हुए रीढ़ ऊपर ले जाओ। ऐसा करते समय श्वास बाहर निकालो। रेचक करते समय पेट सिकोड़ो। रीढ़ की स्थिति धनुष के आकार की होगी।
- यह एक आवृत्ति हुई। इसे 10 बार करो।

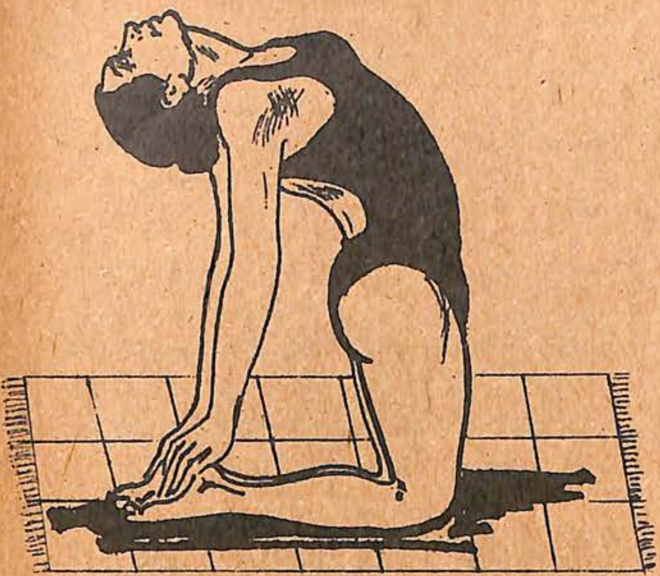

पूर्ण उष्ट्रासन

- ☐ अर्ध उष्ट्रासन की स्थिति में आओ।
- ☐ घुटनों के बल खड़े हो, पीछे की ओर झुककर, हाथों को एड़ियों पर रखो।
- ☐ गर्दन तथा शरीर को, जितना संभव हो, पीछे की ओर झुकाओ। कमर न झुकने दो।
- ☐ घुटनों के बल सीधी स्थिति में वापस आओ।
- ☐ श्वास : घुटनों के बल खड़े होते समय श्वास सामान्य होना चाहिए। पीछे को झुकते समय पूरक करो।

अर्ध उष्ट्रासन

- ☐ घुटनों के बीच में फासला रखते हुए वज्रासन में इस प्रकार बैठो की एड़ियां नितम्बों के दोनों ओर रहें।
- ☐ अपने घुटनों के बल इस प्रकार खड़े हो जाओ कि पैर के पंजे जमीन पर रहें।
- ☐ धड़ को दाईं तरफ मोड़ते हुए, पीछे झुककर दाएं हाथ से बाएं पैर की एड़ी को पकड़ो।
- ☐ बायां हाथ लंब रूप में सिर के ऊपर रखो। हथेली आगे की ओर रहनी चाहिए।
- ☐ सीधी स्थिति में लौटो। विपरीत दिशा में इसी प्रकार दोहराओ।
- ☐ श्वास : घुटनों के बल उठते हुए पूरक, बगल की ओर मुड़ते हुए रेचक, धड़ को मध्य स्थिति में लाते हुए पूरक।

नौकासन

- ☐ पीठ के बल लेटो। कुछ क्षणों तक पूरे शरीर को शिथिल छोड़ दो।
- ☐ अब दोनों पैरों की एड़ियां, पंजे एवं अंगूठों को मिलाते हुए पूरे शरीर को तानो।
- ☐ दोनों हथेलियां पट करके जांघों पर रखो। हाथों को तानो।
- ☐ अब अत्यंत धैर्यपूर्वक गहरा और लंबा पूरक करते हुए पेट एवं छाती में सांस भर लो।
- ☐ सांस अंदर बनाए रखते हुये सिर, पीठ, कमर तथा जांघों तक पैरों को उठाते हुए सारा भार नितम्बों पर डालो। शरीर को नौका की आकृति में ले आओ। सहज कुम्भक में रहो।
- ☐ अब सांस छोड़ते हुए, धीरे से शरीर को ढीला छोड़ दो।
- ☐ यह एक आवृत्ति हुई। दस आवृत्तियों तक इस क्रिया को करो।
- ☐ अंत में श्वास सहज होने तक शवासन करो।
- ☐ श्वास सहज होने के बाद ही अगला अभ्यास करो।

('खेल खिलाड़ी और योग' से साभार)

माथापच्ची

1. लल्लू ने अपने पापा से एक साइकिल खरीदने को कहा। लल्लू की उम्र अभी 12 वर्ष है। पापा ने लल्लू से कहा, बेटे, "तुम्हारी उम्र जब मेरी उम्र की एक तिहाई हो जाएगी तब मैं तुम्हें साइकिल खरीद दूंगा।" लल्लू के पापा की उम्र अभी 50 साल है। बताओ, लल्लू को साइकिल किस उम्र में मिलेगी?

• • •

2. हर रोज सबेरे 9.00 बजे एक गाड़ी बंबई से कलकत्ता के लिए रवाना होती है। ठीक इसी समय कलकत्ता से बंबई के लिए भी एक गाड़ी छूटती है। यदि बंबई से कलकत्ता पहुंचने में 5 दिन लगते हैं तो बताओ रास्ते में कितनी कलकत्ता-बंबई गाड़ी मिलेंगी?

• • •

3. इन वक्र रेखाओं को ध्यान से देखो। क्या लगता है, ये रेखाएं सर्पिलाकार हैं कि वृत्ताकार? तुम चित्र को देखकर यही कहोगे कि रेखाएं सर्पिलाकार हैं। परंतु ऐसा नहीं है। चाहो तो सुई की नोंक किसी भी रेखा पर घुमाकर देख लो।

4. एक किसान ने कहा, "मेरा खेत कुल चार वर्ग किलोमीटर है।" दूसरे ने कहा, "अरे, यह तो कुछ भी नहीं! मेरा खेत कुल तीन किलोमीटर का वर्ग है।" बताओ, किसका खेत बड़ा है?

• • •

5. निम्नलिखित प्रश्नों में आकृतियां दो समूहों में दी गई हैं। एक समुदाय "प्रश्न आकृतियों" का है और दूसरा "उत्तर आकृतियों" का। प्रश्न आकृतियां बाएं से दाएं एक विशेष क्रम में बदलती हैं। अब बताओ, यदि आकृतियां इसी क्रम में बदलती रहें तो अगली स्थिति में उत्तर आकृतियों में से कौन सी आकृति होगी?

प्रश्न आकृतियां — उत्तर आकृतियां

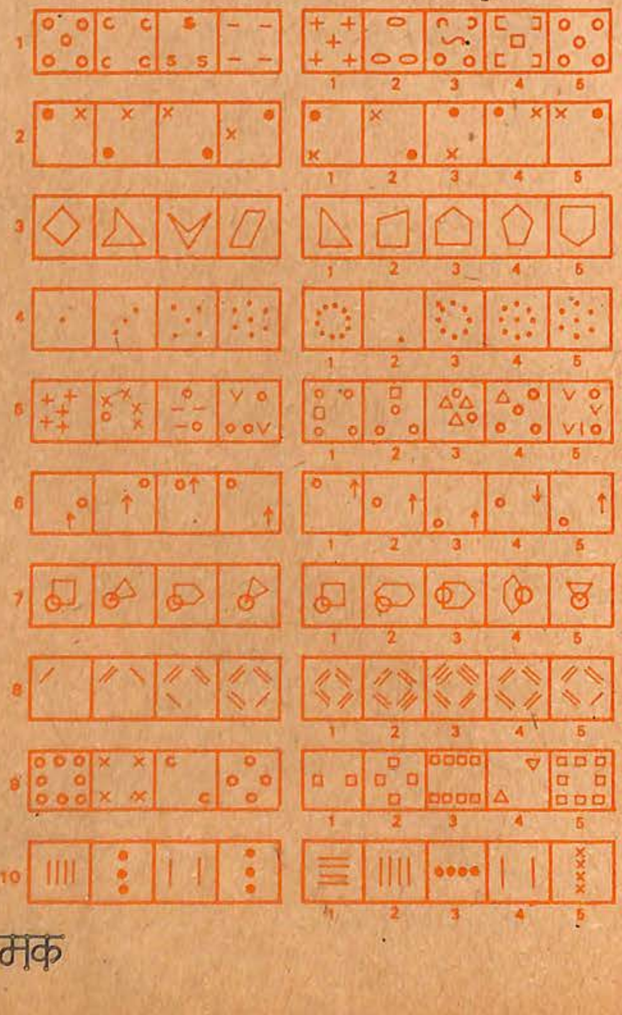

6. एक आदमी ने बंबई से दिल्ली तार भेजा। अगर वह उसी तार को कलकत्ता भेजता तो तार के लिए उसे दिल्ली भेजे गए तार की अपेक्षा 2.50 रुपए अधिक चुकाने होते। बताओ, दिल्ली भेजे गए तार में कुल कितने शब्द थे?

● ● ●

7. दो आदमी एक घंटे के दौरान सड़क पर आने और जाने वाले लोगों को गिन रहे थे। पहला आदमी घर के पास खड़ा था और दूसरा सड़क पर आगे-पीछे घूम रहा था। किसकी गिनती में अधिक लोग आएंगे?

● ● ●

8. सरला और मदन सफर कर रहे थे। मदन के एक परिचित ने महिला का परिचय पूछा। मदन बोले, ''इसकी (सरला की) सास और मेरी सास मां-बेटी हैं।''

बताओ सरला और मदन में क्या रिश्ता हुआ।

● ● ●

9. ममता ने अनिल का परिचय इस तरह दिया, ''ये हैं मेरे फूफा के एकमात्र साले के लड़के।''

बताओ ममता और अनिल में क्या रिश्ता है?''

● ● ●

10. नाम बताओ ऐसी:

- ☐ 6 सब्जियों के जो वास्तव में फल हैं।
- ☐ 3 सब्जियों के जो वास्तव में पत्तियां हैं।
- ☐ 2 सब्जियों के जो वास्तव में जड़ हैं।
- ☐ 2 सब्जियों के जो वास्तव में फूल हैं।

● ● ●

11. एक लुहार के पास जंजीर के पांच टुकड़े जोड़ने के लिए लाए गए। प्रत्येक टुकड़े में तीन कड़ियां थीं। काम शुरू करने से पहले लुहार सोचने लगा कि कितनी कड़ियां को खोलना चाहिए जिससे जंजीर फिर से जोड़ी जा सके। सोच विचार कर उसने निश्चय किया कि चार कड़ियां खोलनी पड़ेंगी। क्या कुछ कम कड़ियों को खोलने से काम चल सकता है?

कठिन माथापच्चियों के हल अगले अंक में।

चमत्कारी पेड़

यह प्रश्न एक मजेदार कहानी के रूप में है। एक दिन जंगल में एक किसान को एक बूढ़ा आदमी मिला। दोनों बातें करने लगे। बूढ़े आदमी ने किसान से कहा,
''इस जंगल में एक चमत्कारी पेड़ है।''
''अच्छा?'' ''क्या बीमारों का इलाज करता है?''
''ऐसा ही समझो, पैसों को दुगना करता है। अपना पैसा एक थैली में डालो और फिर थैली को पेड़ के नीचे रख दो। बस, सौ तक गिनती गिनो और लो–पैसा दुगना
''मैं आजमा सकता हूं क्या?'' किसान ने पूछा।
''क्यों नहीं। पर हां, कुछ पैसा देना पड़ेगा।''
''किसको, और कितना?''
''उसे, जो तुम्हें पेड़ दिखाएगा। और वह आदमी मैं ही हूं।'' बूढ़े आदमी ने कहा।

फिर दोनों लगे सौदेबाजी में। जब बूढ़े को पता चला कि किसान के पास थोड़ा सा ही पैसा है, तो वह किसान की इस बात से सहमत हो गया कि हर बार दुगना करने के लिए 1 रुपया 20 पैसा देगा।

फिर वह दोनों जंगल के बीचोंबीच चले गए। बहुत देर तक झूठ-मूठ यहां वहां देखने के बाद बूढ़ा आदमी किसान को एक पेड़ के पास ले आया जिसके आस–पास खूब झाड़ियां थीं। उसने किसान की पैसे की थैली दूर से ही पेड़ के पास पटक दी। फिर दोनों ध्यान से सौ तक गिनने लगे। बूढ़े आदमी ने खूब ढूंढ़ा–ढांढ़ी के बाद थैली को खोजा और किसान के पास ले आया। किसान ने थैली खोली तो–लो, पैसा दुगना हो गया था। उसने 1 रुपया 20 पैसे गिने और बूढ़े आदमी को देते हुए कहा कि सारी कार्यवाही फिर दोहराओ।

फिर से वह सौ तक गिनने लगे। और पहले की तरह बड़े परिश्रम से बूढ़े आदमी ने थैली खोज कर लौटाई। चमत्कार फिर हुआ। समझौते के आधार पर बूढ़े आदमी को फिर 1 रुपया 20 पैसे मिले।

किसान लालची हो गया। उसने तीसरी बार फिर थैली फिंकवाई और पैसा दुगना हो गया। पर इस बार 1 रुपया 20 पैसे गिनने के बाद यह क्या? थैली खाली। बेचारे किसान ने सारा पैसा खो दिया। दुगना करने के लिए अब कोई पैसा नहीं बचा था।

चमत्कार का कारण तो शायद आप समझ ही गए होंगे? सौ तक गिनना और खूब ढूंढ़ा–ढांढ़ी तरीका था बूढ़े के लिए अपने साथी को इस बात को समय देना कि वह थैली में पैसा दुगना कर दे।

अब प्रश्न यह है कि पहली बार किसान की थैली में कुल कितना पैसा था?

धान-भूसी बर्नर बनाओ

जिन इलाकों में धान की पैदावार अधिक होती है वहां पर धान की भूसी का उपयोग ईंधन के रूप में आसानी से नहीं हो पाता। इसका मुख्य कारण आसानी से धान-भूसी का न सुलगना, कम तापमान पर लपट का ठीक से न जलना, जलते-जलते बुझ जाना, धीरे-धीरे जलना और बहुत धुंआ छोड़ना है।

धान-भूसी का अच्छे ईंधन के रूप में इस्तेमाल कैसे हो? यहां हम एक तरीका बता रहे हैं।

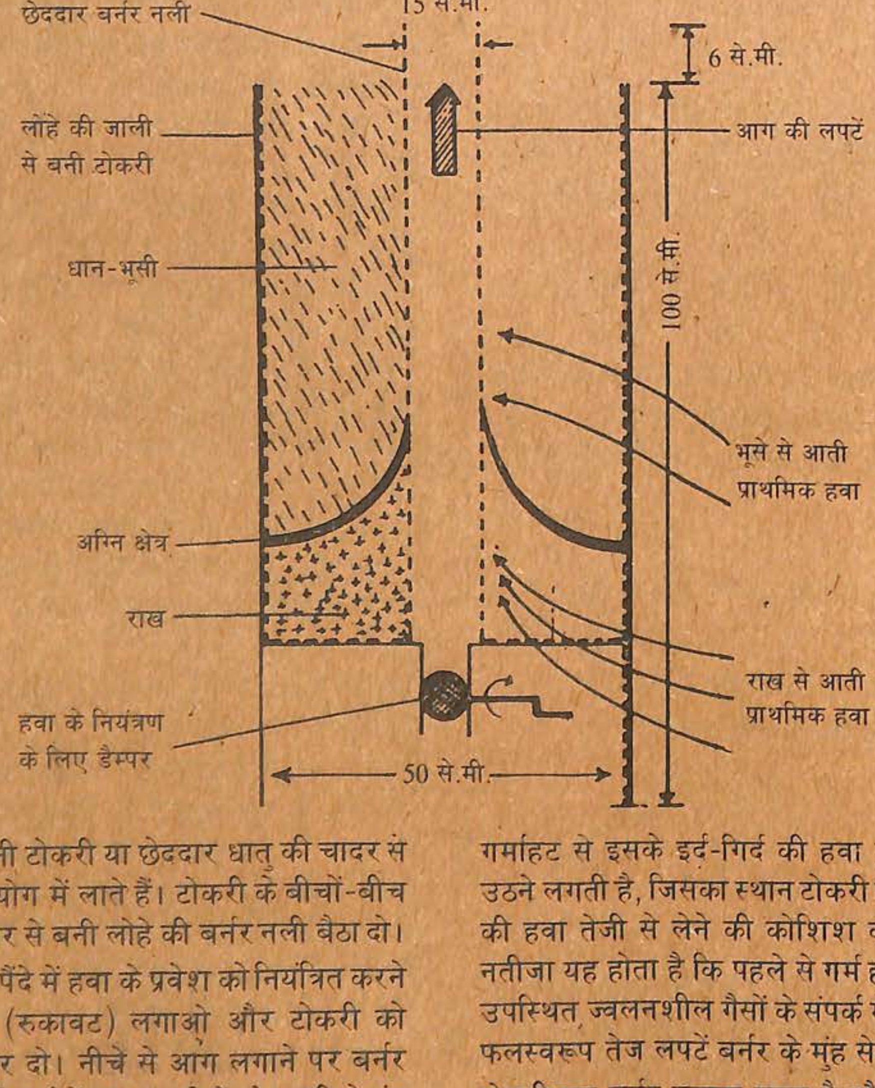

इसमें तार की बुनी टोकरी या छेददार धातु की चादर से बनी टोकरी उपयोग में लाते हैं। टोकरी के बीचों-बीच एक छेददार चादर से बनी लोहे की बर्नर नली बैठा दो। अब इस नली के पैंदे में हवा के प्रवेश को नियंत्रित करने के लिए डैम्पर (रुकावट) लगाओ और टोकरी को धान-भूसी से भर दो। नीचे से आग लगाने पर बर्नर ट्यूब में ज्वलनशील गैसें जल उठती हैं और नली के मुंह से लपटें निकलने लगती हैं।

जैसे ही अग्नि क्षेत्र के ऊपर वाली धान-भूसी की परत गर्म होती है तो इससे ज्वलनशील गैसें निकलने लगती हैं। धान-भूसी के बीच-बीच के खाली स्थान तुरंत ही ज्वलनशील गैसों से भर जाते हैं।

बर्नर की गर्म नली चिमनी का भी काम करती है। इसकी गर्माहट से इसके इर्द-गिर्द की हवा गर्म होकर ऊपर उठने लगती है, जिसका स्थान टोकरी के तले तथा कोनों की हवा तेजी से लेने की कोशिश करती है। इसका नतीजा यह होता है कि पहले से गर्म हवा नली के अंदर उपस्थित ज्वलनशील गैसों के संपर्क में आती है जिसके फलस्वरूप तेज लपटें बर्नर के मुंह से उठने लगती हैं।

टोकरीनुमा बर्नर बनाना सरल है और इसका निर्माण तुम अपने स्थानीय कारीगरों की मदद से कर सकते हो। इसकी लागत लगभग पचास रुपए आती है। अधिक जानकारी के लिए केमीकल इंजीनियरिंग डिपार्टमेंट, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ इंजीनियरिंग, कानपुर (उ.प्र.) से पत्र व्यवहार कर सकते हो।

(ग्राम प्रौद्योगिक विकास परिषद् के सौजन्य से)

किसी देश के किसी शहर में एक आदमी मिट्टी बेचकर अपना गुजारा करता था। शहर हालांकि ईंट-पत्थर और सीमेंट-कंकरीट का होता जा रहा था, फिर भी उसमें कई मकान अभी कच्चे थे। उन मकानों में चूल्हे भी मिट्टी के थे, हालांकि उस देश में विज्ञान काफी तरक्की कर चुका था और गैस तथा बिजली के आधुनिक चूल्हों का चलन उस शहर में खूब था। सो,

मिट्टी

रमेश उपाध्याय

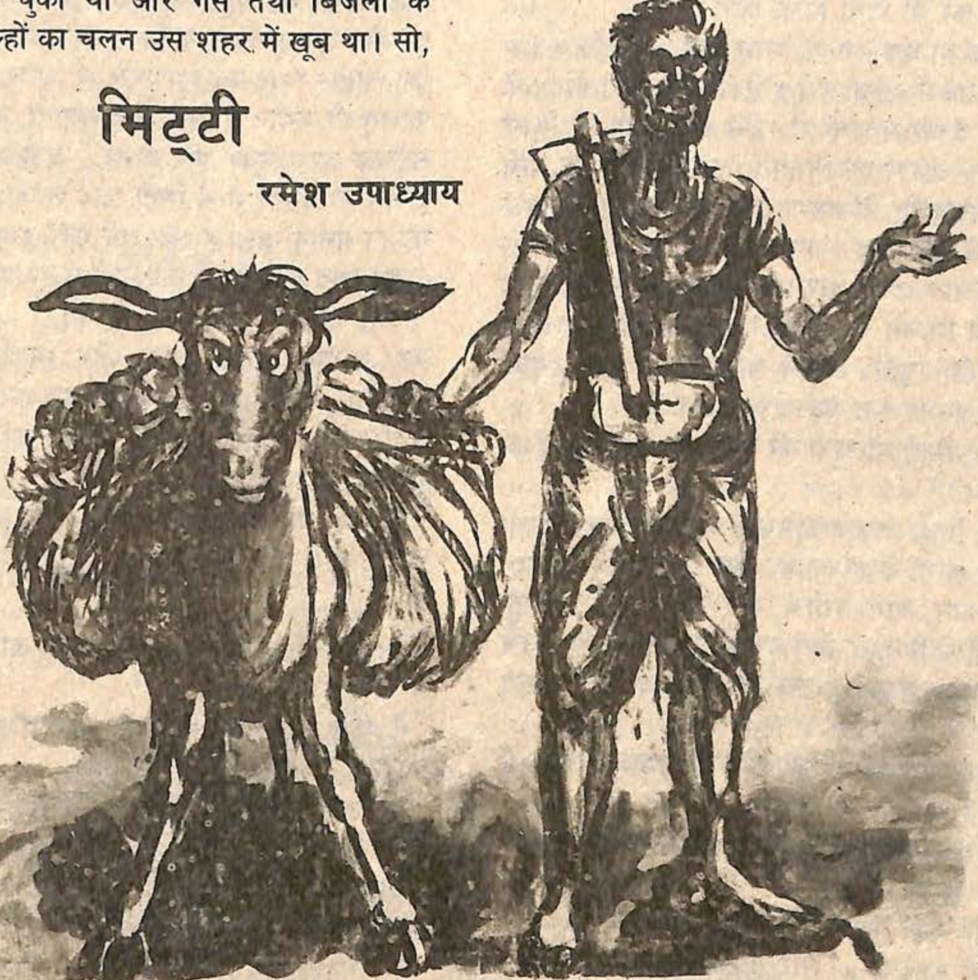

चित्र : चंदनसिंह भट्टी, भोपाल

उन कच्चे मकानों में रहने वालों को अपने घरों की लिपाई-पुताई और चूल्हों की मरम्मत के लिए मिट्टी की जरूरत पड़ती रहती थी और वह आदमी मिट्टी बेचकर अपने बाल-बच्चों का पेट पाल लेता था।

मिट्टी बेचना उस आदमी का पुश्तैनी पेशा था और उसका बाप विरासत में उसके लिए एक गधा, एक फावड़ा और एक टोकरा छोड़ गया था। उस आदमी का खयाल था कि बाप-दादों की तरह वह भी ताजिंदगी यही काम करेगा और अपने बेटों के लिए यही विरासत छोड़ जाएगा। लेकिन उसके बाप-दादों के जमाने में मिट्टी शहर से बहुत दूर नहीं हुआ करती थी, जबकि अब शहर के फैलते जाने के कारण मिट्टी दिन-ब-दिन दूर होती जा रही थी।

वह सुबह मुंह-अंधेरे उठता, रात की बासी रोटियां एक लत्ते में बांधकर बगल में दबाता, फावड़ा कंधे पर रखता और गधे को साथ लेकर घर से निकल पड़ता। घंटों चलकर वह शहर पार कर पाता। किसी उजाड़-सी जमीन में जाकर वह गधे को घास चरने छोड़ देता और खुद मिट्टी खोदने लगता। मिट्टी खोदकर वह गधे पर लादता और वहां से बाहर गलियों तक पहुंचने के लिए घंटों का वापसी सफर तय करता। तब तक दोपहर ढल चुकी होती और उस आदमी को जोरों की भूख प्यास लगी होती। कहीं पानी का इंतजाम देखकर वह रुक

जाता, अपनी सूखी-बासी रोटियां चबाकर पानी पी लेता और गधे को भी पानी पिला लेता।

उसे ग्राहक तो कई मिलते, मगर मिट्टी का वाजिब दाम देने वाले उसमें बहुत कम होते। किसी बड़े त्यौहार के दिन जब कच्चे मकानों में रहने वाले सभी लोगों को अपने घर—आंगन लीपने होते, उसकी मिट्टी मुंह मांगे दामों पर बिकती, लेकिन साल के बाकी दिनों में ग्राहक उससे सीधे मुंह बात न करते। वे बड़ी हुज्जतबाजी के साथ मोलभाव करते और इतना कम दाम देते कि उस आदमी की मेहनत के मुकाबले मिट्टी की कीमत हमेशा बहुत छोटी पड़ती। अपने ग्राहकों के साथ उसकी बातचीत अक्सर इस प्रकार हुआ करती :

" ए मियां, मिट्टी तो खुदा की नेमत है, सिर्फ खुदाई का इतना दाम?"

"सरकार, मिट्टी आजकल मिलती कहां है? चप्पा-चप्पा जमीन पर लोगों ने कब्जा कर रखा है। जहां भी देखिए, मकान-दुकान, बाग-बगीचे, खेत-खलिहान ...! मिट्टी आप लोगों से दिन-ब-दिन दूर होती जा रही है। काले कोसों चलकर जाता हूं, तब एक गधा मिट्टी ला पाता हूं।"

"तुम क्या लाते हो, मिट्टी तो गधा ढोकर लाता है मियां!"

"गधा कोई मुफ्त में नहीं आता सरकार ! और मालिक, गधा कुछ खाता भी है!"

"यह क्यों नहीं कहते कि तुम खाते हो, तुम्हारे बाल-बच्चे खाते हैं ... और मुफ्त की इस मिट्टी से जो माया तुम जोड़ जाओगे, उसे तुम्हारी आने वाली सात पुश्तें खाएंगी!"

"कैसी बात करते हैं सरकार! मिट्टी बेचकर मिलता ही क्या है? कसम खुदा की, एक वक्त की रोटी भी मुश्किल से जुट पाती है!"

"पर हमने जो दाम बोला है, वही देंगे। लेना हो तो डाल दो चार-छह ढेले, नहीं तो हांक ले जाओ अपना गधा आगे।"

मजबूर होकर वह आदमी बेहद कम कीमत पर मिट्टी बेच देता। वह जानता था कि आगे भी उसे ऐसे ही ग्राहक मिलेंगे। वह यह भी जानता था कि ये लोग भी मेरी ही तरह गरीब हैं। नहीं तो इनके भी घर मिट्टी के क्यों होते? इनके घरों में मिट्टी के चूल्हे क्यों होते?

लेकिन उस वक्त उस आदमी को रोना आ जाता जब वह बाजार में आटा-दाल खरीदने पहुंचता। आटे-दाल के भाव दिन दूने चढ़ते जा रहे थे और अपनी जी-तोड़ मेहनत की कमाई से वह आदमी इतना आटा भी नहीं खरीद पाता था कि उसके बाल-बच्चे एक वक्त भरपेट रोटी खा सकें।

फिर भी वह आदमी किसी तरह सब्र करके जिएजा रहा था और ऐन मुमकिन था कि उसकी जिंदगी इसी तरह कट जाती। मगर एक दिन जब वह शहर के बाहर एक फालतू सी जमीन में मिट्टी खोद रहा था, उस जमीन का मालिक आ धमका और बोला, "अच्छा, तो तू है जो रोज मेरी जमीन में से मिट्टी खोद ले जाता है! मैं यहां मकान बनाने वाला हूं और तूने यहां इतने गहरे-गहरे गड्ढे खोद डाले हैं। मैं कई दिनों से तुम्हारी ताक में था बच्चू, आखिर आज पकड़े ही गए।"

वह आदमी घबरा गया और गिड़गिड़ाने लगा, "मालिक, मुझे मालूम नहीं था कि यह जमीन आपकी है, मैं समझता था खाली पड़ी है। आइंदा यहां नहीं आऊंगा, इस बार माफ कर दीजिए।"

जमीन का मालिक बोला, "वाह, वाह! रोज मेरी मिट्टी चुराता रहा और आज पकड़ा गया तो भोला बन रहा है!"

"मैं चोर नहीं हूं मालिक, बेहद गरीब आदमी हूं। मिट्टी बेचकर गुजारा करता हूं।"

"मैं कुछ नहीं जानता। मैं तुझे पुलिस के हवाले करूंगा।"

"मर जाऊंगा मालिक। मेरे बाल बच्चे मर जाएंगे। मुझे छोड़ दीजिए।"

"मैं तुझे एक ही शर्त पर छोड़ सकता हूं। जितनी मिट्टी तू यहां से ले गया है, वापस लाकर इन गड्ढों में भर दे।"

"वह मिट्टी तो मैं बेचकर खा गया मालिक, अब वापस कहां से लाऊंगा?"

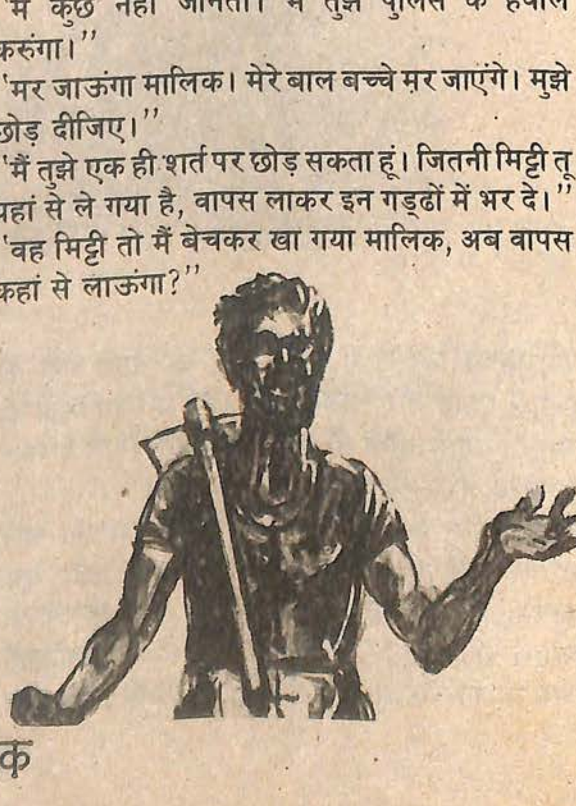

"मैं क्या जानूं, पर इन गड्ढों को तो तुझे पाटना ही पड़ेगा। मकान बनाने से पहले इस जमीन को समतल करना जरूरी है। तू नहीं करेगा, तो मुझे इसके लिए पैसा खर्च करना पड़ेगा।"

"सरकार, आप मालिक हैं, पैसे वाले हैं। लाखों का मकान बनाएंगे, हुजूर का इकबाल बना रहे, जमीन को हमवार कराने के लिए दो-चार गधे मिट्टी डलवा लेंगे तो क्या फर्क पड़ेगा? मैं इन गड्ढों को पाटने लगा तो इतनी मिट्टी लाने में कई दिन लग जाएंगे और तब तक मेरे बाल बच्चे भूखों मर जाएंगे।"

"मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। मिट्टी नहीं ला सकता तो गड्ढों की भराई के पैसे चुका दे।"

"पैसे कहां से चुकाऊंगा सरकार ? मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं।"

"पर तेरे पास यह गधा तो है इसे बेच दे।"

"गधा तो मेरी रोजी का जरिया है सरकार! इसके बिना मैं अपना धंधा कैसे करुंगा?"

लेकिन जमीन के मालिक ने उसकी एक न सुनी। उस पर रहम करने के बजाए गरम होकर उसे चोरी के अपराध का दंड दिलाने की धमकियां देने लगा। मरता क्या न करता, उस आदमी ने अपना गधा बेचकर उस जमीन के गड्ढों की भराई दे दी।

अब वह फ़ावड़ा और टोकरा लेकर मिट्टी खोदने जाता। शहर से दूर जाकर कोई ऐसी जगह खोजता, जहां जमीन बेकार पड़ी हो और उसे कोई देखने वाला न हो।

अब वह सचमुच चोरों की तरह डरते हुए जल्दी-जल्दी मिट्टी खोदता और टोकरा भर मिट्टी सिर पर रख शहर लाकर बेचता। इसमें उसे बहुत तकलीफ होती, क्योंकि टोकरे में मिट्टी ज्यादा होती थी। भार से उसकी गरदन टूटने लगती, और कम भरता तो मिट्टी उसमें इतनी कम आ पाती कि उसे बेचकर मुट्ठी भर चने खरीदना भी मुश्किल हो जाता। लेकिन वह आदमी बड़ा धैर्यवान था। उसने हिम्मत न हारी और किसी तरह गुजारा करने लगा।

मगर कुछ दिन बाद उसे फिर एक जमीन का मालिक मिल गया। यह मालिक पहले वाले से भी ज्यादा दुष्ट निकला। उसने अचानक आकर उस आदमी की पीठ पर एक डंडा जमाया और उसका फावड़ा-टोकरा छीन लिया। वह आदमी बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, लेकिन जमीन के मालिक ने गालियों से बात करते हुए उसे दो डंडे और लगाए तथा धमकी दी, "फिर कभी तुझे यहां देखा तो तेरी टांगें तोड़ दूंगा।"

वह आदमी रोता हुआ खाली हाथ शहर लौट चला। एक बार उसके जी में आया कि कहीं रुककर नाखूनों से ही थोड़ी मिट्टी खुरच-खोद ले और दोनों हाथों में जितनी समाए, उतनी ही शहर ले जाकर बेच दे। लेकिन उसे अपना यह विचार बहुत मूर्खतापूर्ण लगा, अव्वल तो इतनी कम मिट्टी बिकेगी कहां? बिक भी गई तो उसका मिलेगा क्या?

मार खाया हुआ, भूखा-प्यासा वह आदमी शहर में आया और दुख और चिंता में डूबा हुआ सिर झुकाए चलने लगा। लेकिन रास्ते में एक जगह उसे ग्राहकों ने घेर लिया। कहने लगे, "क्यों मियां, मिट्टी कहां है? आज त्यौहार का दिन है, घर-आंगन लीपना है, सबेरे से तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं और तुम अब आ रहे हो? सो भी खाली हाथ?"

उसे याद नहीं था कि आज कोई त्यौहार है, लेकिन त्यौहार की बात सुनकर उसके दिल में हूक-सी उठी। त्यौहारों के दिन उसकी मिट्टी झटपट बिक जाती थी और पैसे भी ज्यादा मिल जाते थे। लेकिन आज त्यौहार था, ग्राहक मुंहमांगा दाम देने को तैयार थे और उसके पास मिट्टी नहीं थी। डबडबायी आंखों से वह अपने ग्राहकों को देखने लगा।

किसी ग्राहक ने फिर पूछा, ''बोलते क्यों नहीं मियां, मिट्टी क्यों नहीं लाए?''

''मुझे ही खरीद लीजिए सरकार! मैं खुद मिट्टी हो गया हूं!'' उस आदमी ने कहा और फफक कर रो पड़ा।

लोगों को उससे हमदर्दी हुई, लेकिन उसके मिट्टी हो जाने की कथा सुनकर सब लोग खामोश रह गए। कहें तो क्या कहें? करें तो क्या करें?

एक औरत को उस पर बड़ी दया आई। वह चुपचाप घर के अंदर गई और त्यौहार के लिए बनाया गया थोड़ा-सा खाना पत्तल पर परोसकर ले आई। खाना अच्छा था और वह आदमी भूखा था, लेकिन उसने खाने के लिए बढ़ाया हाथ खींच लिया। बोला, ''घर में बच्चे भूख से तड़पते रहें और मैं खाना खा लूं, यह मुझसे नहीं हो सकता बहन! हो सके तो यह खाना बांधकर दे दो, घर ले जाऊंगा।''

यह सुनकर दूसरी औरतों को भी तरस आया। वे भी अपने-अपने घरों से थोड़ा-थोड़ा खाना ले आईं और उस सारे खाने को एक बड़ी सी पोटली में बांधकर उन्होंने उस आदमी को थमा दिया।

वह आदमी दुआएं देता हुआ अपने घर गया।

इतना ज्यादा और इतना बढ़िया खाना उसके परिवार ने बरसों से नहीं खाया था। प्रसन्न होकर सब उससे पूछने लगे, ''आज कौन-सी मिट्टी बेची, जो इतना बढ़िया और इतना सारा खाना मिला?''

उस आदमी ने उन्हें सारा किस्सा सुना दिया।

''तब तो तुम रोजाना खुद को ही बेचा करो। भरपेट खाना तो नसीब होगा।'' उसकी पत्नी ने तृप्त होकर उंगलियां चाटते हुए कहा।

अगले दिन वह आदमी फिर उसी मुहल्ले में गया, जहां के कच्चे घरों की औरतों ने कल उसे खाना दिया था। वहां जाकर वह एक पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर बैठ गया और कहने लगा, ''मैं मिट्टी हूं। है कोई खरीददार इस मिट्टी का!''

लेकिन सब दिन त्यौहार नहीं होते, और सब समय लोगों के दिलों में दया पैदा नहीं होती। वह आदमी शाम तक भूखा बैठा रहा, किसी ने पानी तक को न पूछा। उल्टे, कल दया दिखाने वाली औरतें ने आज मुंह बिचकाते हुए कहा, ''मुए को मुफ्त का खाने की चाट पड़ गई लगती है।'' मगर वह आदमी वहां से हिला नहीं। जाए तो कहां जाए? करे तो क्या करे? गधा उसके पास नहीं, फावड़ा उसके पास नहीं, टोकरा उसके पास नहीं, और खुदा की नेमत मिट्टी भी जमीन मालिकों की मिल्कियत बन गई है। वह हाथों से भी मिट्टी खोदने को तैयार था, लेकिन डरता था, जमीन का कोई मालिक आकर उसके हाथ भी काट डाले तब?

शाम को मुहल्ले के मर्द काम-काज से लौटे तो उस आदमी ने फिर हांक लगाई, ''मिट्टी ले लो.... मिट्टी!''

''कहां है मिट्टी?'' लोगों ने हैरान होकर पूछा।

''मैं हूं... मैं मिट्टी हूं!''

'पर तुम तो लीपने के न पोतने के, तुम्हें लेकर कोई क्या करेगा?''

''मैं खुदाई जानता हूं, मुझसे खुदाई करा लीजिए।''

''क्यों मजाक करते हो मियां! हमारे पास कौन-सी जमीन जायदाद है कि तुमसे खुदाई कराएं? खेत हमारे पास नहीं, बाग-बगीचे हमारे पास नहीं, कोई कुएं-बावड़ी या नहर-तालाब भी हमें तुमसे नहीं खुदवाने। टूटे-फूटे कच्चे मकान हैं, और उनमें कोई खजाने नहीं गड़े हुए हैं। खुदाई करनी है तो कहीं और जाकर करो।''

किसी और ने कहा, ''मेहनत-मज़दूरी करो मियां, जैसे हम करते हैं। यहां आकर भीख मांगने बैठ गए, इससे तो अच्छा होता कोई काम खोजते!''

उस आदमी को बड़ी शर्म आई, क्योंकि वह भिखमंगा नहीं था और मेहनत की ही कमाई खाना पसंद करता था। शर्मसार होकर वह वहां से उठकर चल दिया।

काम की तलाश में भटकता हुआ वह एक कब्रिस्तान के पास से गुजर रहा था कि वहां उसे एक आदमी कब्र खोदता नजर आया। वह उसके पास जाकर बोला, ''क्यों भाई, क्या मुझे भी कब्र खोदने का काम मिल सकता है?''

कब्र खोदने वाले आदमी ने मजाक में कहा, ''तुम तो मियां, खुद मुर्दे जैसे हो रहे हो। क्या खुद अपनी कब्र खोदना चाहते हो?''

उस आदमी ने एक पल सोचा और कहा, ''नहीं मैं उन माटीमिले मालिकों की कब्र खोदना चाहता हूं, जिन्होंने मुझे जीते-जी मार डाला है।'' ● ●

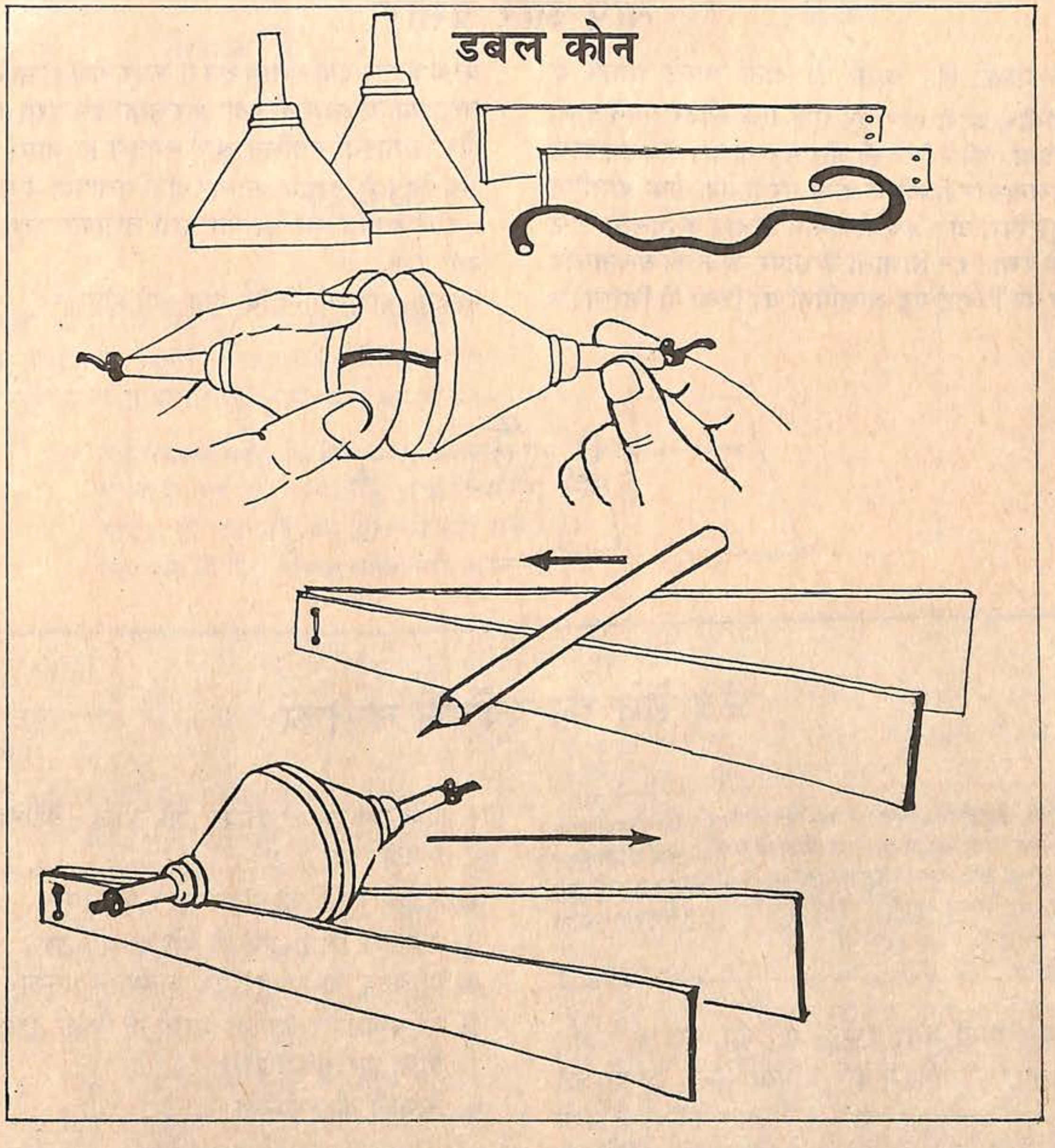

अधिकतर चीजें ऊपर से नीचे की ओर लुढ़कती हैं। परंतु डबल कोन नीचे से ऊपर की ओर चढ़ता है। आओ देखें कैसे?

दो प्लास्टिक की कीप लो। उसके गोलाकार हिस्सों को सटाकर उनके बीच में एक साइकिल वाल्व ट्यूब या रबर का छल्ला पिरो दो। ट्यूब के छोरों में मोटी गांठ बांध दो।

रबर के छल्ले के तनाव से दोनों कीप जुड़ी रहेंगी। और डबल कोन बनाएंगी।

दो गत्तों को काटकर एक ढलान बनाओ। इस ढलान की ऊंची तरफ गोल पेंसिल रखो। पेंसिल ढलान से लुढ़क कर ऊपर से नीचे आएगी।

अब डबल कोन को ढलान पर नीचे की ओर रखो। डबल कोन नीचे से ऊपर की ओर चढ़ेगा। ऐसा क्यों? इसका कारण है कि नीचे की ओर रखते समय डबल कोन का गुरुत्वाकर्षण केंद्र गत्ते की सड़क के स्तर से ऊपर था। इस वजह से डबल कोन में संचित ऊर्जा थी जो गतिमान ऊर्जा में बदल गई।

अरविंद गुप्ता

ताप और प्रसार

एक कार्क लो। कार्क की दोनों चपटी सतहों के बीचोंबीच यानी छोर पर एक-एक स्वेटर बुनने वाली सलाइयां नुकीले सिरे की ओर से लगा दो। अब इस कार्क के बेलनाकार हिस्से के दोनों तरफ एक-एक आलपिन या सुई पिरो दो। अब दो समान ऊंचाई के गिलास उल्टे करके रखो। इन गिलासों के ऊपर कार्क की बेलनाकार सतह पर पिरोई गई आलपिनों को टिका दो जिससे कि कार्क व सलाइयां स्वतंत्र रूप से ऊपर नीचे हो सकें। अब सलाइयों को कार्क के अंदर और बाहर इस तरह करो कि दोनों सलाइयां संतुलित और समतल हो जाएं।

अब चित्र में दिखाए अनुसार दोनों सलाइयों में से किसी एक के स्वतंत्र सिरे को मोमबत्ती जलाकर गरम करो। क्या हुआ?

सोचना और बताना कि ऐसा क्यों होता है?

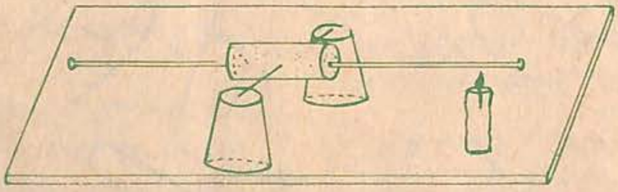

अंडे सेने का कृत्रिम तरीका

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत कक्षा सात में बाल वैज्ञानिक के अध्याय विकास के अध्ययन में मुर्गी के अंडों की जरूरत पड़ती है। ये अंडे अलग-अलग अवस्थाओं के चाहिए होते हैं, जो आमतौर पर मिलते नहीं हैं। इस तरीके से अलग-अलग अवस्थाओं के अंडे प्राप्त किए जा सकते हैं।

आजकल गांवों तथा शहरों में देशी मुर्गी के बजाए संकरजाति की सफेद मीनार मुर्गियां पालने का प्रचलन ज्यादा चल गया है। इन मुर्गियों की खासियत यह है कि ये बिना मुर्गे के भी अंडे देती हैं। जबकि देशी मुर्गियों को मुर्गे के संपर्क में आना जरूरी है। तभी इनसे अंडे पैदा किए जा सकते हैं। जो अंडे मुर्गे तथा मुर्गी के संपर्क से पैदा होते हैं उन्हें निषेचित अंडे कहते हैं। इन अंडों से भ्रूण का विकास हो सकता है।

अंडे सेने का मतलब है कि निषेचित अंडों के ऊपर मुर्गी का बैठना। जब इन अंडों पर मुर्गी बैठती है तब उनको एक निश्चित तापक्रम 37-40 डिग्री सेंटीग्रेड मुर्गी से मिलता है। यहां हम अंडे सेने का एक नया तरीका बता रहे हैं। इस नए तरीके में अंडों को सेने के लिए तुम्हें निम्नलिखित चीजों की जरूरत पड़ेगी:-

1. एक लकड़ी का खोका, जो 30-45 सेंटीमीटर से ज्यादा लंबा न हो।
2. पुआल (खोके के अंदर रखने के लिए)।
3. ढकने के लिए खोके के साइज का पुट्ठा।
4. दो बल्व, दो होल्डर एवं आवश्यकतानुसार तार।
5. दो थर्मामीटर (अपनी शाला के विज्ञान शिक्षक से प्राप्त कर सकते हो)।
6. बिजली की व्यवस्था।

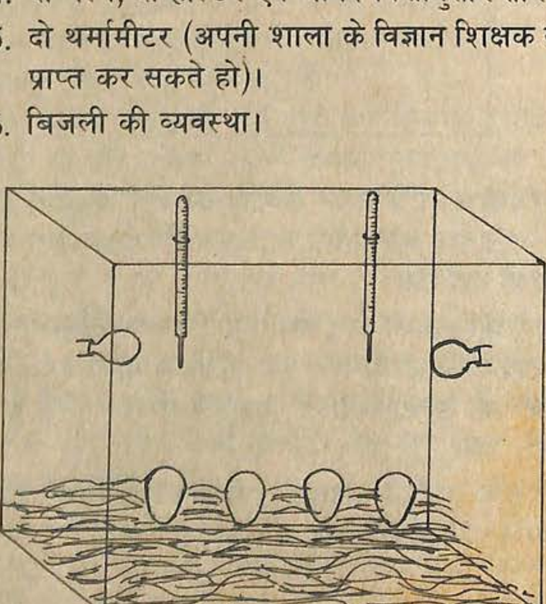

सिक्के को बोतल में गिराओ

एक खुली बोतल के मुंह पर एक खाली माचिस V आकार में मोड़कर रखी है। उस पर एक सिक्का रखा है। सिक्के का व्यास बोतल के मुंह के व्यास से कम है।

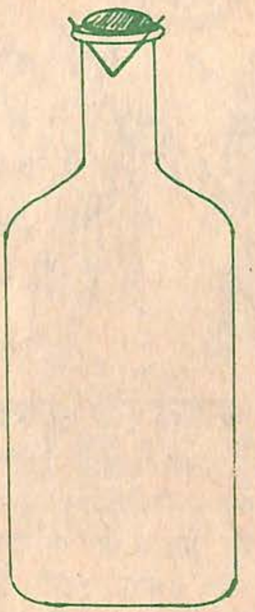

अब समस्या यह है कि सिक्के को बोतल के मुंह के अंदर करना है। पर तुम माचिस को हाथों से नहीं छू सकते हो और न ही उसको किसी चीज से हटा सकते हो। अब बताओ कैसे सिक्का बोतल के अंदर जाएगा?

- सर्वप्रथम एक खाली खोका लो। उसके अंदर पुआल जमाओ।
- अब खोके के ऊपर ढके जाने वाले पुट्ठे में 15-15 सेंटीमीटर की दूरी पर दो ऐसे छेद करो कि उनमें थर्मामीटर (तापमापी) फिट हो सकें।
- खोके के अंदर दो 25-25 वॉट के बल्व लगाकर उनका विद्युत से संबंध कर दो।
- अब एक-डेढ़ घंटे बाद थर्मामीटर का पाठ्यांक नोट कर लो।

बल्व जलने से खोके के अंदर का तापक्रम बढ़ेगा। यहां हमारा उद्देश्य है कि खोके के अंदर का तापमान हमारी जरूरत के अनुसार 37-40 डिग्री सेंटीग्रेट होना चाहिए। 37 डिग्री सेंटीग्रेड से कम तापक्रम पर भ्रूण का विकास नहीं हो पाता है एवं 40 डिग्री सेंटीग्रेड से ऊपर ताप पर भ्रूण मर जाता है।

यदि 37 डिग्री सेंटीग्रेड़ तापक्रम न हो तो पुट्ठे को इधर-उधर खिसकाकर खोके को अच्छी तरह बंद करो। यदि तापक्रम 40 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक हो तो खोके के ऊपर के पुट्ठे को थोड़ा-नीचे खिसकाकर ऐसा समायोजित करो कि तापक्रम कम हो जाए। इस सबके बावजूद भी अगर तापक्रम कम न हो तो 25 वॉट से कम वोल्टेज के बल्व लगाओ और तापक्रम नोट करो।

जब थर्मामीटर निश्चित तापक्रम दिखाने लगे तब खोके के अंदर निषेचित अंडों को इस प्रकार रखो कि अंडों का नुकीला सिरा नीचे की ओर रहे।

खोके के अंदर अंडे रखने से पहले उन पर पेंसिल से तारीख लिख दो। जिस दिन अंडा रखा है उस दिन का अंडा शून्य रोज का माना जाएगा। यदि तुम्हें अंडे की 10 दिन की अवस्था का अध्ययन करना है तो अंडे को 10 दिन पूर्व रखना होगा। प्रतिदिन अंडों को एक निश्चित अक्ष पर घुमा देना होगा। लेकिन ध्यान रहे कि हमेशा अंडे का नुकीला सिरा नीचे की ओर रहे। अब, इस प्रयोग में कुछ सावधानियां भी जरूरी हैं। जैसे कि—

1. अगर प्रयोग गर्मी में करना हो तो कम से कम 5 वॉट के बल्वों का उपयोग करना। अगर तापक्रम 40 डिग्री सेंटीग्रेड से फिर भी ज्यादा है तो केवल एक ही बल्व का उपयोग करना।
2. लकड़ी के खोके को बिल्कुल वायुरुद्ध मत कर देना।
3. घुमाते समय अंडों को ज्यादा मत हिलाना अन्यथा विकसित होता भ्रूण विकृत हो सकता है। और भ्रूण का विकास रुक भी सकता है।
4. खोके के ऊपर रखे गए पुट्ठे को प्रतिदिन 1-2 घंटे के लिए पूर्ण रूप से हटा दो।

कालूराम शर्मा, धार

चकमक कथाएं

बेहतर शिष्य

शतरंज के एक प्रसिद्ध खिलाड़ी के दो शिष्य थे। उनमें से एक शिष्य तो गुरु की हर बात बड़े ध्यान से सुनता था और मन लगाकर सीखता था। पर दूसरा गुरु की बात सुनने के साथ-साथ हमेशा जंगली बत्तखों के बारे में सोचता रहता था और धनुष-बाण से उन्हें मार गिराने के लिए बेचैन रहता था। इसलिए वह पहले शिष्य की तरह शतरंज नहीं सीख पाया और उससे पीछे रह गया।

उसके पीछे रहने का कारण निश्चित रूप से यह नहीं था कि उसकी बुद्धि पहले शिष्य के मुकाबले कम थी।

डरपोक

एक आदमी बड़ा डरपोक था। वह भूत प्रेतों से बहुत डरता था।

एक रात वह कहीं से लौट रहा था। वह आमतौर पर रात को कहीं नहीं आता-जाता था। लोगों ने उसे समझाया, "चांदनी रात है, डरने की क्या जरूरत?" इसलिए वह अपना दिल कड़ा करके अकेला ही सड़क पर चलने लगा।

एक सुनसान जगह पहुंचकर वह चांद की रोशनी में अपनी ही परछाईं को एक बड़ा भूत समझ बैठा और थर-थर कांपने लगा।

अब वह सिर झुकाकर चलने लगा। कुछ दूर जाने के बाद वह अपनी ही परछाईं को एक छोटी भूतनी समझ बैठा।

डर के मारे उसने चांद की तरफ मुंह कर लिया और पीछे की तरफ चलने लगा। अब उसकी परछाईं तो गायब हो गई, पर मन में भूत-प्रेतों का भय बना रहा।

खुशामद

एक अमीर आदमी ने एक गरीब आदमी से पूछा, "मैं धनवान हूं। तुम मेरी खुशामद क्यों नहीं करते?"

गरीब आदमी ने जवाब दिया, "तुम अपना धन मुझे थोड़े ही दे रहे हो। मैं तुम्हारी खुशामद आखिर क्यों करूं?"

"अच्छा, अगर मैं अपना बीस प्रतिशत धन तुम्हें दे दूं, तो क्या तुम मेरी खुशामद करोगे?"

"नहीं, तब भी मैं अपने को बेइंसाफी का शिकार समझूंगा और तुम्हारी खुशामद नहीं करूंगा।"

"अगर मैं अपने धन का आधा हिस्सा तुम्हें दे दूं, तो?"

"तब भी नहीं। तब मेरा दर्जा तुम्हारे बराबर हो जाएगा। ऐसी हालत में भला मैं तुम्हारी खुशामद क्यों करूंगा।"

"अगर मैं अपना पूरा धन तुम्हें दे दूं तो क्या करोगे?"

"तब तो मैं खुद भी अमीर बन जाऊंगा। ऐसी हालत में तुम्हारे तलवे सहलाने की जरूरत ही क्या रह जाएगी?"

चित्र : हेमंत वायंगणकर, भोपाल

रंग धनुष

मध्यप्रदेश विज्ञानसभा, भोपाल द्वारा पर्यावरण दिवस 5 जून 86 पर आयोजित चित्र प्रतियोगिता में आए चित्र।

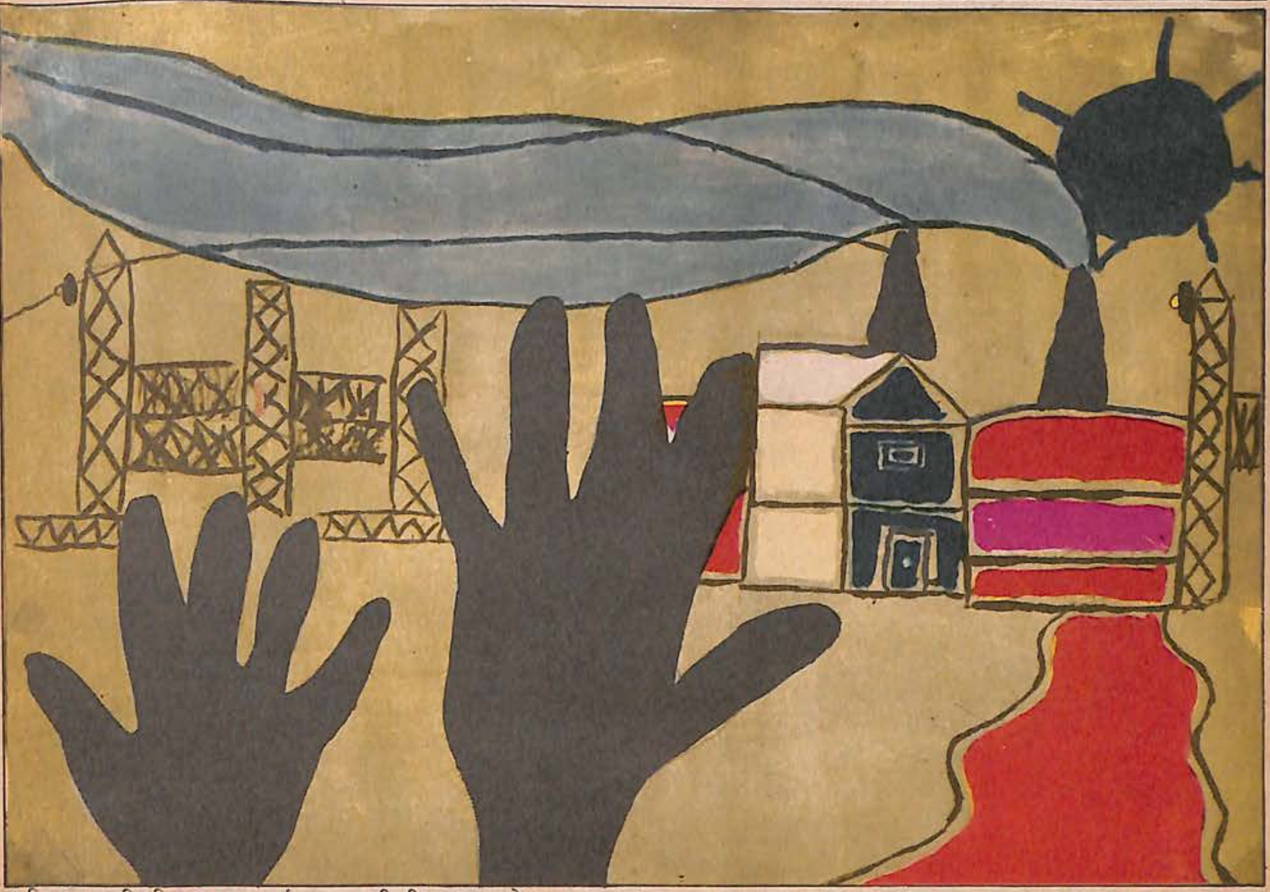

↑चित्र : स्मृति सिन्हा, 10 वर्ष, साउथ टी.टी. नगर, भोपाल

↓चित्र : रत्नाकर सेठिया, 16 वर्ष, शिवाजी नगर, भोपाल

डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/86
पंजीयन क्रमांक 1317/सी/85